Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ श्रीः ॥

2638

सूर्यशतकम्

'कला' हिन्दीव्याख्योपेतम्

891'2
T 2638 स

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. 2638

Book No. 891'2
ग   व

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

८९१.२

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय • लखनऊ •

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

d by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Fundi

॥ श्रीः ॥

द्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१०६

श्रीमयूरभट्टविरचितं

सूर्यशतकम्

'कला' हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार :—

श्री रमाकान्त त्रिपाठी

रिसर्च स्कालर, संस्कृत विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

म्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Luckn

ed by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Fundin

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२१

मूल्य : २-५०

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1964

Phone : 3076

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
क्रमांक 2638
प्राप्ति तिथि 25.5.65
State Museum, Library, Lucknow

-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Luckn

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
106

SŪRYAS'ATAKA

OF

S'RĪ MAYŪRA BHAṬṬA

Edited with

THE KALĀ HINDĪ COMMENTARY

BY

S'RĪ RAMĀKĀNTA TRIPĀTHĪ
(Research Scholar, Sanskrit Department,
Lucknow University, Lucknow.)

Rs. 2.50

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1.
1964

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

891.2
त्रे स

Also can be had from

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Antiquarian Book-Sellers & Publishers

POST BOX 8, VARANASI-1 (India) PHONE : 3145

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध 'सूर्यशतक' सातवीं शताब्दी के कवि मयूरभट्ट की रचना है। अत्यधिक प्रसिद्धि के कारण ही विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद किये हैं। एक अनुवाद डा० कार्लो वर्नहीमर् द्वारा इटैलियन भाषा में किया गया है जिसका शीर्षक 'सूर्यशतकम् डि मयूरे' है। यह अनुवाद सन् १९०५ ई० में प्रकाशित हुआ था तथा प्रकाशित अनुवादों में सूर्यशतक का यह सर्वप्रथम अनुवाद है। दूसरा अनुवाद अंग्रेजी भाषा में क्वैकेन वास के द्वारा किया गया है जो १९१७ ई० में कोलम्बिया विश्वविद्यालय प्रेस, न्यूयार्क से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त इसका अन्य कोई अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। एक दिन मेरे अभिन्न मित्र श्री ज्ञानप्रकाश अवस्थी एम० ए० ने मुझे 'सूर्यशतक' को अनूदित करने के लिए कहा और इस अनुवाद कार्य में सहायता देने का आश्वासन भी दिया। मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

भारतीय धार्मिक साहि[illegible] में यह मेरा प्रथम प्रयास है। बाण के समसामयिक होने के कारण मयूर की भाषा भी स्वभावतः दुरूह है। ऐसी स्थिति में अनुवाद में कहीं-कहीं कुछ त्रुटि रह जाना सम्भव है। मैं विद्वानों के परामर्श का स्वागत करूँगा तथा भावी संस्करण में उसके समुचित उपयोग से अपने को धन्य समझूँगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्त में मैं अपने प्रिय मित्र श्री अवधेशकुमार श्रीवास्तव एम० ए० के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनसे समय-समय पर विभिन्न रूपों में मुझे सहायता मिली है। मैं अपने प्रिय शिष्य भोलानाथ सरीन (बी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय) को भी नहीं भूल सकता जिसने पाण्डुलिपि को तैयार करने में अथक परिश्रम किया है। मैं पुनः त्रुटियों के लिए क्षमा चाहते हुए यह अनुवाद-कुसुम मयूरभट्ट को ही श्रद्धाञ्जलि के रूप में समर्पित करता हूँ।

रमाकान्त त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषयानुक्रमणिका

भूमिका	...	...	१–४४
१. मयूर का काल-निर्णय		...	१
मयूर का जीवनवृत्त	...	...	६
मयूर का धर्म	...	...	९
अन्य मयूर	...	...	११
२. मयूर की कृतियाँ	...	...	१३
मयूराष्टक	...	...	१४
सूर्यशतक	...	...	१५
मयूरविरचित अन्य पद्य	...	...	१७
शब्दलिंगार्थचन्द्रिका	...	...	२०
आर्यामुक्तामाला	...	...	२०
३. सूर्यशतक	...	...	२१
सूर्यशतक का सार	...	...	२१
सूर्यशतक में छन्दो-विधान	...	...	२३
सूर्यशतक के टीकाकार	...	...	२४
सूर्यशतक के संस्करण	...	...	२५
अन्य सूर्यशतक	...	...	२६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

४. धार्मिक साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास ... २८
सूर्यस्तोत्रों में सूर्यशतक का स्थान ... ३२
५. मयूर की शैली ३४
मयूर की अलंकारयोजना ३८
६. सूर्योपासना की परम्परा ४४
ग्रीक पौराणिक गाथाओं में सूर्य ... ४९
ऐतिहासिक युग में सूर्योपासना ... ५१
कुष्ठरोग-निवारण में सूर्य का महत्त्व ... ५३
सहायक पुस्तकों की सूची ... A-B
मूलग्रन्थ १-६६
श्लोकानुक्रमणिका ६७-६८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूमिका

१

मयूर का काल-निर्णय

अन्य भारतीय कवियों की भाँति मयूर भी अपने विषय में सर्वथा मौन हैं। उपलब्ध दो ग्रन्थों में इन्होंने अपने अथवा अपने माता-पिता एवं वंश के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है अतएव हम उनके समय के निर्णय करने में किसी भी आन्तरिक-प्रमाण से सर्वथा वंचित हैं। हमारा ज्ञान केवल बाह्य प्रमाणों तक ही सीमित है। इनकी काव्य-मर्मज्ञता एवं विद्वत्ता के कारण साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में कवियों एवं अलंकारशास्त्रियों ने कहीं तो स्पष्टरूप से उनकी प्रशंसा की है एवं कहीं उनके एकमात्र कीर्तिस्तम्भ 'सूर्यशतक' से श्लोक उद्धृत कर उन्हें सम्मानित किया है।

परवर्ती जिन प्रमुख साहित्यकारों ने मयूर का अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है, उनमें से सबसे बाद के कवि का सर्वप्रथम तथा सबसे पहले के कवि का उल्लेख हम सबसे बाद में, क्रम से, करते हैं, जिससे उन कवियों से उनका पूर्ववर्तित्व सिद्ध हो जायगा। मयूर का उल्लेख हमें वामनभट्ट (१४४१ ईस्वी) कृत वीरनारायणचरित्र,[1] माधव (१३००–१३५० ई०) कृत 'संक्षेप शंकर-

---

टिप्पणी—नीचे दिए गए संस्कृत भाग के उद्धरण तथा उनके साथ दिए गए नाम उन विभिन्न ग्रन्थों के हैं, जिनमें मयूर का उल्लेख किया गया है किन्तु संस्कृत उद्धरणों के ऊपर हिन्दी अथवा आंग्ल भाषा में दिए गए नाम उन ग्रंथों के हैं, जहाँ से हमने विभिन्न कवियों की तिथि उद्धृत की है। सुविधा के लिए दोनों पर अंक एक समान डाला गया है।

१. T. T. Krishnamacharier, History of classical Sanskrit Literature, P. 104.

प्रतिकविभेदेन बाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धु जयति श्रीभट्टबाणकविराजः॥ वीरनारायणचरित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विजय,[१] मेरुतुङ्ग (१३०६ ई०) कृत प्रबन्धचिन्तामणि,[२] जयदेव (११८०-१२०० ई०) कृत प्रसन्नराघव,[३] मम्मट (१०५०--११०० ई०) कृत काव्य प्रकाश,[४] पद्मगुप्त (९७५–१०२५ ई०) कृत नवसाहसाङ्कचरित[५] एवं सोमदेव सूरि (९५९ ई०) कृत यशस्तिलक[६] में तो स्पष्ट रूप से मयूर के विषय में कहा

---

१. Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayura, P. 14

स कथाभिरवन्तिषु प्रसिद्धान् विबुधान् बाणमयूरदण्डिमुख्यान् ।
शिथिलीकृतदुर्मताभिमानान् निजभाष्यश्रवणोत्सुकांश्चकार ॥

—संक्षेपशंकरविजय

२. कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ३४७, नोट ७–अनूदित–मंगलदेव शास्त्री (१९६० संस्करण)। 'पुरा किल श्रीविक्रमार्कसमयादष्टसतयुत्तरसहस्र-सम्मितेषु संवत्सरेषु व्यतीतेषु संप्राप्तोदयस्य श्रीमद्भोजराजस्य सभासद्मरत्नदीपो महाकविर्मयूरो नाम धारानगरीमधिवसति स्म ।'— प्रबन्धचिन्तामणि (यज्ञेश्वर कृत सूर्यशतक टीका में उद्धृत) ।

३. Keith, Classical Sanskrit Literature, P. 113

"यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरो कर्णपूरो मयूरो,
भासो हासोः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणश्च बाणः,
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ ·—प्रसन्नराघव

४. T. T. Krishnamacharier, History of classical Sanskrit Litarature, Page 164.

आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम् ।

—काव्यप्रकाश, पृष्ठ १, चौखम्बा प्रकाशन ।

५. Buhler, Indian Antiquary, Vol. 36, Pp.150,172.

स चित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीश्वरः ।
श्रीहर्ष इव सङ्घट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ॥ —(नवसाहसाङ्कचरित)

६. कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३९३, अनूदित —मंगलदेव शास्त्री (१९६० संस्करण)।

"उर्वभारविभवभूतिभर्तृमेण्ठकण्ठगुणाढ्यव्यासभासव्रोसकालिदासबाणमयूर-नारायणकुमारमाघराजशेखरादिमहाकवि···महती प्रसिद्धिः"

—यशस्तिलक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है जिससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मयूर का समय अधिक से अधिक दशम शताब्दी का पूर्वार्ध रहा होगा किन्तु वह इससे कई शताब्दी पूर्व ही संस्कृत साहित्य को अलंकृत कर चुके थे क्योंकि ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य (८५० ई०) ने अपने 'ध्वन्यालोक' में सूर्यशतक के दो[1] श्लोकों को उद्धृत किया है, जिससे मयूर ८५० ई० के पूर्व ही वर्तमान रहे होंगे, यह निश्चित हो जाता है।

मयूर का काल-निर्णय यहीं समाप्त नहीं हो जाता है क्योंकि कुछ अन्य तथ्य उनको नवम शताब्दी से भी पूर्व का कवि मानने को बाध्य करते हैं। गद्य-काव्य रचयिता बाणभट्ट ने अपने ग्रंथ हर्षचरित में अपने मित्रों की एक सूची दी है जिसमें 'जांगुलिक मयूरक'[2] नामक एक मित्र का भी उल्लेख है। जांगुलिक शब्द का अर्थ 'विष-वैद्य' होता है तथा मयूर कवि को भी इस विष-विद्या का पर्याप्त ज्ञान था। इस तथ्य की पुष्टि जल्हण कृत 'सूक्तिमुक्तावली' में उद्धृत राजशेखर कृत पद्य से होती है जिसमें कहा गया है कि कवि भुजङ्गों का दर्प अब नहीं सुनाई देता क्योंकि जिस प्रकार मयूर की विष-विद्या सर्पों को विनष्ट

---

१. नो कल्पापायवायोरदयरयदलत्क्ष्माधरस्यापि शम्या,
गाढोद्गीर्णोज्ज्वलश्रीरहनि न रहिता नो तमःकज्जलेन।
प्राप्तोत्पत्तिः पतङ्गान्न पुनरुपगता मोषमुष्णत्विषो वो,
वर्तिः सैवान्यरूपा सुखयतु निखिलद्वीपदीपस्य दीप्तिः॥

—ध्वन्यालोक, लोचन, चौखम्बा प्रकाशन, पृ० २२९

× × × ×

दत्तानन्दाः प्रजानां समुचितसमयाकृष्टसृष्टैः पयोभिः
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाजः।
दीप्तांशोर्दीर्घदुःखप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो वः पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु॥

—ध्वन्यालोक, लोचन, चौखम्बा प्रकाशन टीका, पृ० २४४

२. जांगुलिको मयूरकः...हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृष्ठ ६७, चौखम्बा प्रकाशन।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करती है, उसी प्रकार उनकी वाणी अथवा कविता कवियों के दर्प को विनष्ट करती है[1]। राजशेखरकृत इसी पद्य के आधार पर पं० रामसरूप शास्त्री तथा पं० देवीप्रसाद ने भी 'जांगलिक मयूरक' तथा कवि मयूर की अभिन्नता को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है[2]। सम्भवतः राजशेखर ने मयूर के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने के लिए ही इस श्लोक की रचना की हो। पाश्चात्य विद्वान् क्वेकेनब्रास ने भी मयूर को 'मयूरक' से सर्वथा अभिन्न माना है तथा उनका कथन है कि बहुत से कवि अपने प्रारम्भिक जीवन में प्रतिभावान् होते हुए भी उचित साधनों के उपलब्ध न होने से अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं कर सके[3]। अतएव सम्भव है मयूरक ही बाद में मयूर कवि हो गए हों। यदि मयूर तथा मयूरक की अभिन्नता को इस श्लोक के आधार पर मान लिया जाय तब तो बाण के समसामयिक होने के कारण मयूर का समय भी निश्चित

---

१. दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाग् निकृन्तति ॥

--राजशेखर, सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत

२. It is possible that this Mayura may be the same as referred to above as 'jangulika Mayurakah' among the companions of Bāṇa during his wanderings, for the verse might be taken to suggest that the poet Mayūra might also have been a 'jangulika' or 'Poison doctor'. —Pt. Ram Swarup Shastri and Pt. Devi Prasad Malviya. Kadambari (Kathamukha-bhaga) Introduction Page 9.

३. Many poets have been men of humble origin and limited means of education, plautus was a miller and an actor's servant; Shakespeare held horses, Kalidasa may have been a slave.

G. P. Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayura

(Page 30-31)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हो जायगा किन्तु कुछ विद्वानों को यह अभेद अमान्य है। उनके मतानुसार मयूर तथा मयूरक की अभिन्नता उपर्युक्त श्लोक के आधार पर प्रमाणित नहीं की जा सकती है।

यदि हम 'जांगलिक मयूरक' तथा कवि मयूर को भिन्न-भिन्न ही मानें तो भी राजशेखर के ही एक अन्य श्लोक से हमें बाण तथा मयूर के समकालीन होने का प्रमाण मिल जाता है। जल्हणकृत 'सूक्तिमुक्तावली' में उद्धृत इस श्लोक में बाण, मयूर तथा मातंगदिवाकर नामक जैन कवि को हर्ष की सभा का कवि कहा गया है—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समं बाणमयूरयोः॥

हर्ष के समय से विषय में कोई ऐतिहासिक वैमत्य नहीं है तथा उनका समय ६०६-६४६ ई० निश्चित है। अतएव हर्ष की सभा का कवि होने के कारण मयूर का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित होता है।

प्रसंगवश यहाँ इस भ्रममूलक धारणा का स्पष्टीकरण भी आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ जैनगाथाओं[1] तथा भोजप्रबन्ध[2] में मयूर को जो भोज की

---

१. "पुरा अमरावतीजयिन्यां श्री-उज्जयिन्यां पुरि वृद्धो भोजराज-पूज्योऽधीतशास्त्रपूरो मयूरो नाम पण्डितः अधिवसति स्म" Quackenbos—Sanskrit Poems of Mayūra P. 30-31

× × × ×

संप्राप्तोदयस्य श्रीमद्भोजराजस्य सभासद्मरत्नदीपो महाकविमयूरो धारानगरीमधिवसतिस्म।

झलकीकर—काव्यप्रकाश टीका, पृष्ठ १०-११ में उद्धृत

२. "ततः क्रमेण पञ्चशतानि विदुषां बाण-वररुचि-मयूर-रेफन-हर-शंकर······सर्वशास्त्रविचक्षणाः सर्वे सर्वज्ञाः श्रीभोजराजसभामलंचक्रुः।

—भोजप्रबन्ध

× × × ×

ततः सर्वे गाढं कलहायन्ते स्म मयूरादयश्च अद्यैवावधिः पूर्णः॥

—भोजप्रबन्ध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सभा का कवि कहा गया है वह भी उचित नहीं है। भोजप्रबन्ध तो सर्वथा अप्रामाणिक एवं भ्रमोत्पादक ग्रन्थ है क्योंकि इसके रचयिता बल्लालसेन[१] (१६०० ई०) ने संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों को चाहे वह ईसा की पहली शताब्दी के हों अथवा पन्द्रहवीं शती के, भोजराज का सभा-कवि बताया है। यह ग्रन्थ केवल भोजराज की प्रशंसा के लिए लिखा गया है तथा इसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है। वैसे भी भोज का समय लगभग ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है तथा मयूर उनसे कहीं पूर्व संस्कृत साहित्य को अलंकृत कर चुके थे। यही बात जैन गाथाओं के विषय में भी कही जा सकती है। वहाँ भी अपने धर्म के प्रचारमात्र के लिए भोजराज की प्रशंसा की गई है तथा उनकी प्रामाणिकता सर्वथा संदिग्ध है। अतएव मयूर को भोज की राजसभा का कवि मानना असंगत है।

मयूर का जीवन-वृत्त

मयूर का प्रारम्भिक जीवन सर्वथा अन्धकारमय है। विभिन्न किंवदन्तियों के अनुसार इन्हें महाकवि बाण का श्वशुर,[२] जामातृ[३], श्यालक[४] अथवा

---

१. कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३४७, अनूदित—मंगलदेव शास्त्री।

२. मयूरो नाम पण्डितः प्रतिवसति स्म, तज्जामाता बाणः...।'

—प्रबन्धचिन्तामणि, मेरुतुंग

मयूरभट्टः श्वशुरो बाणभट्टः कादम्बरीग्रंथस्य कर्त्ता तस्य जामाता···।'

(मधुसूदन-भावबोधिनी-सूर्यशतक टीका)

३. Mayūra was the son-in-law of Bāṇa' —F. Maxmuller—India what can it teach us. Page 339.

४. "महाकविर्मयूरो धारानगरीमधिवसति स्म। तस्य च भगिनीपतिः कादम्बरीगद्यप्रबन्धनिर्माता बाणकविः परमं मित्रमासीत्।" —यज्ञेश्वर शास्त्री, सूर्यशतक टीका

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

भगिनीपति[1] बताया जाता है। उनमें से एक किंवदन्ती के अनुसार मयूर बाण के श्वशुर थे। एक बार जब रात्रि लगभग समाप्त हो चुकी थी उस समय मयूर किसी कार्यवश उनके घर आए। बाहर से ही उन्होंने कुछ शब्द सुना। घटना यह थी कि बाण की पत्नी किसी कारणवश उनसे अप्रसन्न हो गई थीं और बाण उनको मनाने में संलग्न थे किन्तु बाण के लाख मनाने पर भी वह मान नहीं त्याग रही थीं। तब बाण ने उन्हें प्रसन्न करने के लिए एक नवीन श्लोक की रचना की—

"गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्ते मानं त्यजसि न यथा त्वं क्रुधमहो"

इन तीन पंक्तियों की रचना के पश्चात् बाण से श्लोक का चौथा पाद नहीं बन रहा था। मयूर अभी तक इन लोगों का प्रणय-कलह सुन रहे थे, किन्तु उनसे अब मौन न रहा गया तथा उन्होंने श्लोक का चौथा पाद इस प्रकार बनाया—"कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्॥" बाण की पत्नी अपने पिता के मुख से इस प्रकार की बात सुन कर और भी क्रुद्ध हो गईं तथा उन्हें कुष्ठ रोग से ग्रसित होने का शाप भी दे दिया। अन्य स्थानों पर भी यही कथा मिलती है किन्तु कहीं बाण श्वशुर हैं, मयूर जामाता हैं तो कहीं बाण मयूर की भगिनी के पति हैं तथा कहीं मयूर ही बाण के भगिनीपति बताए गए हैं। इन किंवदन्तियों में सम्भवतः सत्यांश नहीं है क्योंकि यदि मयूर का बाण से किसी प्रकार का वैवाहिक सम्बन्ध होता तो वे अवश्य ही 'हर्षचरित' में इसका उल्लेख करते। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न सम्बन्धों का उल्लेख होने से भी यह प्रतीत होता है कि इन कथाओं में कोई वास्तविकता नहीं है। सम्भवतः बाद के कवियों ने मयूरभट्ट तथा बाणभट्ट की जातिसभ्यता के आधार पर एवं समय की

---

१. Then the two Pandits related as sister's husband and wife's brother, who were called Mayūra and Bāṇa...'. C. H. Tawney—Prabandhachintamani, P. 64.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

समानता के आधार पर एक ही सम्राट् के आश्रय में होने के कारण तथा साहित्य में प्रायः मयूर और बाण का साथ-साथ उल्लेख होने के कारण तथाकथित सम्बन्धों की कल्पना की हो और यह सभी वैवाहिक सम्बन्ध उनके अपने मस्तिष्क की उपज हों। फिर भी इन जनश्रुतियों में कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है। बाण तथा मयूर में कोई वैवाहिक सम्बन्ध भले ही न रहा हो किन्तु उनकी घनिष्ठता निःसंदिग्ध है।

इस बात की भी पर्याप्त संभावना है कि हर्षचरित में उल्लिखित 'जांगुलिक मयूरक' तथा मयूर कवि अभिन्न रहे हों। यदि 'जांगुलिक मयूरक' ही कवि मयूर हैं तो हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि वह अपने प्रारम्भिक जीवन में विष-वैद्य रहे होंगे। उनके वैद्य होने का आभास हमें सूर्यशतक के छठे श्लोक में भी मिलता है जहाँ उन्होंने कुष्ठरोग के चिह्नों का स्पष्ट एवं सूक्ष्म विवेचन किया है। सम्भव है वैद्य होने के कारण ही अन्य देवताओं की अपेक्षा उन्होंने सूर्य देवता को विशेष महत्त्व प्रदान किया हो क्योंकि सूर्य से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। इस तथ्य का उद्घाटन भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में भी मिलता है। यह भी सम्भव है कि मयूर विष-वैद्य भी रहे हों तथा कवि भी और इसी कारण उन्हें साहित्योपासना का पर्याप्त अवकाश न मिल सका हो। इस प्रकार हम उनके प्रारम्भिक जीवन के विषय में केवल यही अनुमान कर सकते हैं कि वह सर्प-वैद्य अथवा विष-वैद्य रहे होंगे।

कवि के रूप में मयूर के विषय में हमें जगन्नाथकृत सूर्यशतक टीका से केवल इतना ज्ञात होता है कि वाराणसी में 'मुण्डमण्डन' नामक कोई साहित्यिक प्रतियोगिता हुई थी जिसमें अनेक प्रतियोगियों ने भाग लिया था। प्रतियोगिता का पुरस्कार शास्त्र-ज्ञान तथा वेद-वेदान्तादि विषयों के ज्ञान पर आधारित था। इस प्रतियोगिता में कवि मयूर भट्ट ही काव्य-कुशलता एवं काव्यों के अनुशीलन के कारण पुरस्कार-विजेता घोषित किए गए थे[1]।

---

१. पुरा किल शरच्चन्द्रमण्डितकपालकपालिकतारकब्रह्मदानवारितक्षेत्रक-क्षीणकलेवरो वाराणस्यामशेषशास्त्रविचारसंग्रामवेदवेदान्तादिविद्यावित्तवेतंग्रहीकृतान्तेवासिभटाजिताशेषब्रह्माण्डभाण्डोदर"'मुण्डमण्डनविद्वद्गणवैरिरीतित्रयान्वित-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मधुसूदन ने अपनी भावबोधिनी (सूर्यशतक टीका) में इस बात का उल्लेख किया है कि मयूर ने सर्वप्रथम एक जनसमूह के समक्ष अपने कुछ श्लोक सुनाए थे जिन्हें सुनकर सम्राट् हर्षवर्धन ने उन्हें अपनी राज-सभा में बुला लिया था।[1] संभव है जगन्नाथ द्वारा पूर्वोक्त वाराणसी की साहित्यिक प्रतियोगिता में उपस्थित विद्वान् ही वह जनसमूह हों तथा वहाँ विजयी होने पर ही सम्राट् हर्षवर्धन ने इनकी प्रशंसा सुनकर इनको अपने देश में बुला लिया हो। यह भी सम्भव है कि 'मयूराष्टक' ही वह रचना रही हो जिसे मयूर ने सर्वप्रथम जन-समूह के समक्ष कहा हो क्योंकि भाषा तथा शैली की दृष्टि से 'मयूराष्टक' मयूर की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है।

इसके पश्चात् सम्भवतः मयूर अपने घर से हर्ष की राजसभा में चले आए थे। इस बात की भी पर्याप्त संभावना है कि हर्ष के आश्रय में रहकर ही मयूर ने सूर्यशतक की रचना की हो। जनश्रुति के अनुसार भी मयूर को कुष्ठरोग हो जाने पर सम्राट् हर्षवर्धन ने अपनी राजसभा से निकाल दिया था और तभी उन्होंने सूर्यशतक की रचना की थी जिससे सूर्य भगवान् प्रसन्न हुए तथा मयूर ने पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया था। इसके अतिरिक्त मयूर के जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं मिलता। अतएव मयूर के जीवन के विषय में हमारी ज्ञान-पिपासा अतृप्त ही रह जाती है।

मयूर का धर्म

अनेक विद्वानों का मत है कि मयूर जैनधर्मावलम्बी कवि थे। उनके जैन होने की भ्रान्ति का एकमात्र आधार ९५९ ई. के जैन विद्वान् सोमदेवसूरिकृत

कवितात्याजितकविराजराजिकाव्यसुजातगर्वम् तपःखर्वीकृताशेषतपोधनो महामहोपाध्यायश्रीमान् मयूरभट्टः'''इत्यादि।

—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री—'Notices of Sanskrit Manuscripts II Series, Vol I, Page 411.

१. कियत्स्वपि दिवसेषु अतीतेषु कवित्वप्रसंगे तत् पद्यानि श्रुत्वा राज्ञा स्वदेशात् आकारितः।' —मधुसूदन, भावबोधिनी (सूर्यशतक टीका)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

'यशस्तिलक' से होता है। 'यशस्तिलक' में राजा यशोधर जैनधर्म ग्रहण करने की इच्छा प्रकट करते हैं तथा अपनी माँ द्वारा रोके जाने पर वह कालिदास, भवभूति, भारवि, राजशेखर, बाण तथा मयूर आदि कवियों के ग्रंथों में की गई जैनधर्म की प्रशंसा का उल्लेख करते हैं[1]। इनमें से कालिदास, राजशेखर तथा बाण आदि कवि निश्चितरूप से ब्राह्मणधर्मावलम्बी थे, जैनधर्मावलम्बी नहीं। अतएव इस अप्रामाणिक कथन के आधार पर मयूर को जैन कवि मान लेना युक्तिसंगत नहीं है। मयूर ने अपने ग्रंथों में कहीं भी जैनधर्म की प्रशंसा नहीं की है।

इसके विपरीत इस मत की पुष्टि अनेक तथ्यों से होती है कि कवि मयूर सूर्योपासक थे। इसका ज्वलंत प्रमाण तो मयूर की रचना 'सूर्यशतक' ही है क्योंकि यदि मयूर जैन होते तो वह सूर्योपासना न करके अन्य किसी देवता की उपासना करते। यदि हम इसे शापमुक्ति का उपाय मान लें तो भी 'सूर्यशतक' के अन्तिम १०१ श्लोक में स्पष्टरूप से इस बात का उल्लेख मिलता है कि उन्होंने भक्ति से प्रेरित होकर इस शतक की रचना की थी।[2] कुछ विद्वान् इस अन्तिम श्लोक को प्रक्षिप्त मानते हैं। संभवतः उनकी इस धारणा के दो कारण हैं, एक तो यह कि कुछ टीकाओं में, जिनमें त्रिभुवनपालकृत टीका भी है, इस श्लोक की टीका नहीं की गई है तथा दूसरा कारण यह है कि सूर्यशतक नाम से ही प्रतीत है कि इसमें केवल सौ श्लोक हैं किन्तु वास्तव में यह धारणा न्यायसंगत नहीं है क्योंकि एक तो अन्तिम श्लोक में टीका करने योग्य कोई कठिन शब्द ही नहीं है तथा इसके अतिरिक्त कुछ अन्य टीकाओं में इस श्लोक पर भी टीका की गई है। यदि शतक होने के कारण इस श्लोक को मूल ग्रंथ से पृथक् समझा जाता है तो वह भी उचित नहीं है क्योंकि

---

१. उर्वभारविभवभूतिभर्तृहरिभर्तृमेण्ठकण्ठगुणाढ्यव्यासभासव्रोसकालिदासबाणमयूरनारायणकुमारमाघराजशेखरादिमहाकविकाव्येषु तत्र तत्रावसरे भरतप्रणीते काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धे च कथं तद्विषया महती प्रसिद्धिः। —यशस्तिलक

२. श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिताः श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्ताश्चैतान्पठेद्यः सकृदपि पुरुषः सर्वपापैर्विमुक्तः।
आरोग्यं सत्कवित्वं मतिमतुलबलं कान्तिमायुःप्रकर्षं,
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बाणकृत 'चण्डीशतक' में १०२ श्लोक हैं तथा आचार्य आनन्दवर्धन ने अपनी कृति देवीशतक के १०१ श्लोक में अपने पिता नोण का उल्लेख किया है। अतएव सूर्यशतक के १०१ वें श्लोक से उनकी सूर्यभक्ति प्रमाणित होती है।

इसके अतिरिक्त अन्वयमुख, जो 'सूर्यशतक' के एक टीकाकार थे, का भी मत यही है कि आत्मिक वेदना से मुक्ति पाने के लिए तथा जनकल्याण के लिए मयूर कवि ने भक्ति से प्रेरित होकर सूर्यशतक की रचना की थी।[1]

हर्ष के समय में सूर्योपासना की परम्परा अधिक प्रचलित भी थी तथा हर्ष के पिता एवं पितामह 'आदित्यभक्त' थे यह बात भी हर्ष के कुछ शिलालेखों से ज्ञात होती है।[2] अतएव सम्भव है कि मयूर ने भी अधिक प्रचलित धर्म का अवलम्बन लिया हो।

अन्य मयूर

सातवीं शताब्दी के हमारे कवि मयूरभट्ट के अतिरिक्त अन्य अनेक मयूर नामधारी नृपति, राजकुमार तथा लेखक हुए हैं। प्रायः परवर्ती अन्य मयूरों की रचनाओं से भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि संभवतः यह भी सातवीं शताब्दी के मयूरभट्ट की रचना हो। इसलिए इसका एक संक्षिप्त विवरण देना अप्रासंगिक नहीं होगा। मयूरभट्ट के अतिरिक्त अन्य मयूर नामधारी कवियों अथवा राजाओं का उल्लेख इस प्रकार है :—

(१) नवीं शताब्दी में एक 'मयूर' राजकुमार अथवा सेनापति थे। इन्होंने एक युद्ध में नन्दावल्ल को परास्त किया था। तत्पश्चात् स्वयं एक दूसरे युद्ध में प्रतिहार सेनापति वौंक के द्वारा परास्त किए गए तथा वीरगति को प्राप्त हुए।

(२) दूसरे मयूर शंकुक के पिता थे। इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। यद्यपि सम्भवतः यह हमारे कवि मयूरभट्ट से अभिन्न होंगे क्योंकि मयूरभट्ट के भी पुत्र शंकुक का उल्लेख मिलता है।

---

१. मयूरो नाम महाकविरन्तःकरणादिसर्वावयवनिर्वृतिसिद्धये सर्वजनोपकाराय च आदित्यस्य स्तुतिं श्लोकशतकेन प्रणीतवान्।

२. हर्ष का मधुवन शिलालेख—Epigraphica Indica, vol, 7. P. 157-159

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

(३) तीसरे मयूर 'पदचन्द्रिका' नामक एक 'पर्यायवाची-संग्रह' ग्रंथ के रचयिता हैं। इसका विवरण पाश्चात्य विद्वान बर्नेल ने दिया है। उन्होंने इनको कवि मयूरभट्ट से भिन्न माना है किन्तु इस विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया है। यद्यपि 'पदचन्द्रिका' की प्रारम्भिक पंक्तियों में सूर्य के पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं।

(४) मयूरभट्ट, लक्ष्मणगिरि के एक ग्रंथ के टीकाकार का भी नाम है। इनका विवरण Earust Hass ने अपने संस्कृत तथा पाली ग्रंथों के संग्रह में दिया है।

(५) विश्ववर्मन् नामक राजा के प्रधान मंत्री मयूराक्षक थे। इनका ४२४ ई० के एक शिलालेख में वर्णन मिलता है। यह शिलालेख गुप्त सम्राटों के समय का है तथा इसके अनुसार मयूराक्षक ने एक विष्णु भगवान् का मन्दिर बनवाया था तथा देवियों के एक मन्दिर का निर्माण करवाया था।[1]

(६) मयूरवर्मन् नामधारी तीन नृप हांगल के कादम्ब थे जो ग्यारहवीं से बारहवीं शताब्दी में राज्य करते थे अथवा संभव है इससे भी पूर्व राज्य करते रहे हों।[2]

(७) मयूरवाह 'कल्पकारिकासार' के लेखक हैं। इस ग्रंथ में वेद से सम्बन्धित बातें कही गई हैं।

(८) मयूरध्वज एक राजा थे।[3]

(९) मयूरपोषक सम्राट् चन्द्रगुप्त के पिता का नाम था।[4]

निश्चय ही ऊपर कहे गए सभी मयूर सातवीं शताब्दी के हर्ष के समय के कवि मयूरभट्ट से भिन्न हैं। इन्होंने 'सूर्यशतक' 'मयूराष्टक' तथा सुभाषित संग्रहों में संगृहीत कुछ पद्यों के अतिरिक्त कोई ग्रंथ नहीं लिखा है तथा यदि लिखा ही हो तो वह इन ग्रन्थों से सर्वथा पृथक् ही होगा। कवि के रूप में मयूर के विषय में विभिन्न ग्रन्थों से केवल इतना ही ज्ञान प्राप्त होता है।

---

1. Epigraphica Indica vol. 5
2. Aufrecht Catalogus Catalogrums vol. I, P. 432.
3. Journal of the Asiatic Society of Bengal vol. 69, p. 78.
4. Monier William—Sanskrit English Dictionary —Mayūr.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२

मयूर की कृतियाँ

मयूर के समय की भाँति ही मयूर की रचनाओं के विषय में भी विद्वानों में परस्पर मतभेद है। फिर भी प्रायः सभी विद्वान् निःसंदिग्धरूप से 'सूर्यशतक' तथा मयूराष्टक की रचना का श्रेय मयूर को प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त सुभाषित संग्रहों में संगृहीत कुछ पद्यों को भी विद्वान् लोग मयूरकृत ही मानते हैं। यह श्लोक संख्या में कुल सोलह हैं तथा इनमें से सात श्लोकों में पार्वती तथा शिव का परस्पर वार्तालाप है जो मयूरकृत किसी अनुपलब्ध ग्रन्थ के प्रारम्भिक श्लोक प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त डा० व्यूह्लर 'आर्यमुक्तामाला' नामक एक ग्रन्थ को मयूर की कृति मानते हैं। विलियम टेलर के अनुसार धनञ्जय के एक ग्रन्थ पर लिखी गई 'शब्दलिंगार्थचन्द्रिका' नामक टीका भी मयूर की ही रचना है। जहाँ तक मयूराष्टक, सूर्यशतक तथा कुछ संगृहीत पद्यों का प्रश्न है वह तो निस्सन्देह मयूर विरचित हैं किन्तु 'आर्यमुक्तामाला' तथा 'शब्दलिंगार्थचन्द्रिका' के विषय में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।

प्राप्त दो सर्वथा पूर्ण रचनाओं में मयूराष्टक मयूर की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। इसकी भाषा तथा शैली के अनुशीलन से ही हमें यह ज्ञात होता है। मनुष्य स्वभावतः अपने प्रारंभिक जीवन में चञ्चल एवं उच्छृङ्खल होता है किन्तु बाद में जैसे-जैसे जीवन के कटु सत्यों का उसे अनुभव होने लगता है वैसे-वैसे वह गम्भीर तथा दूरदर्शी हो जाता है। मयूराष्टक में हमें मयूर की यौवनसुलभ चपलताओं के दर्शन होते हैं तथा सूर्यशतक में उनके जीवन के अनुभवों के साथ-साथ हम उनको एक भक्त कवि के रूप में पाते हैं।

बाण तथा मयूर के सम्बन्ध के विषय में प्रचलित कथा के आधार पर भी हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'मयूराष्टक' मयूर की पहली कृति है तथा सूर्यशतक उसके बाद की रचना है। कथा इस प्रकार है कि बाण तथा बाण की पत्नी (मयूर-पुत्री) में प्रणय-कलह हो गया था और बाण अपनी दयिता को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी प्रकार प्रसन्न करना चाहते थे। रात्रि समाप्त हो चुकी थी तथा बाण की पत्नी मान किए बैठी थी। बाण ने प्रियतमा के प्रसन्न होने का कोई और उपाय न देखकर एक श्लोक की रचना की—

गतप्राया रात्रिः कृततनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्ते मानं त्यजसि न यथा त्वं क्रुधमहो

तीन चरणों की रचना के पश्चात् बाण से चौथा चरण नहीं बन रहा था। मयूर जो किसी कार्यवश बाण के यहाँ आए हुए थे, छिपकर उन दोनों का प्रणय-कलह सुन रहे थे, उनसे अब न रहा गया और उन्होंने श्लोक का अन्तिम चरण इस प्रकार कह सुनाया —

कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम्।

इतना सुनते ही बाण की पत्नी जलकर खाक हो गई तथा क्रोधान्ध होकर उन्होंने अपने पिता को शाप दिया कि जाओ तुम्हें कुष्ठ हो जाय। तब मयूर ने कुष्ठ रोग से छुटकारा पाने के लिए 'सूर्यशतक' की रचना की।

मधुसूदन की 'भावबोधिनी' नामक सूर्यशतक टीका में मयूर के कुष्ठ रोग का कारण अपनी पुत्री के सौन्दर्यातिशय का पद्यों में वर्णन बताया गया है। 'भक्तामरस्तोत्र' में भी स्पष्टरूप से 'मयूराष्टक' को ही वह पद्यरचना बतलाया गया है। अतएव इन दोनों के आधार पर यदि 'मयूराष्टक' को मयूर के कुष्ठ रोग का कारण तथा सूर्यशतक को कुष्ठ से त्राण पाने का उपाय मान लिया जाय तो मयूराष्टक ही मयूर की प्रथम कृति निश्चित होती है। वैसे भी हम इसे भाषा तथा शैली के आधार पर मयूर की प्रारम्भिक रचना मान सकते हैं।

मयूराष्टक

मयूराष्टक आठ श्लोकों की एक रचना है जिसमें किसी युवती के सौन्दर्यातिशय का वर्णन किया गया है। यह वर्णन सम्भवतः प्रिय से मिलकर लौटती

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुई किसी अभिसारिका नायिका का है जैसा कि मयूराष्टक के निम्न पद्य से भी प्रतीत होता है—

एषा का स्तनपीनभारकठिना मध्ये दरिद्रावती
विभ्रान्ता हरिणी विलोलनयना संत्रस्तयूथोद्गता।
अन्तःस्वेदगजेन्द्रगण्डगलिता संलीलया गच्छति
दृष्ट्वा रूपमिदं प्रियाङ्गगहनं वृद्धोऽपि कामायते॥

अर्थात् 'डरे हुए झुण्ड से बिछुड़ी हुई अतएव घबड़ाई हुई हरिणी के समान चञ्चल नेत्रों वाली, पीन स्तनों के भार से आक्रान्त और क्षीणकटि वाली यह कौन अंगना है जो भीतर ही भीतर मदजल से युक्त किसी श्रेष्ठ गजेन्द्र के गण्डस्थल से गलित हुई-सी बड़े विलास के साथ जा रही है ? सुन्दर अंगों से भरे हुए इसके रूप को देखकर वृद्ध पुरुष भी कामातुर हो उठता है।'

अन्य श्लोकों में भी इसी प्रकार एक युवती के सौन्दर्य एवं चारुत्व का वर्णन किया गया है। मयूराष्टक के प्रारम्भ में शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया गया है तथा अन्त में 'इति श्रीमयूराष्टकम् समाप्तम्' से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना सर्वथा पूर्ण है।

सूर्यशतक

सूर्यशतक मयूर की दूसरी प्राप्त पूर्ण रचना है। इसमें जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है सौ श्लोकों में भगवान सूर्य की आराधना की गई है। अन्तिम १०१ वें श्लोक में कवि ने स्वयं इस बात का संकेत किया है कि यह काव्य भक्ति से प्रेरित होकर जनकल्याण के लिए लिखा गया है। जनश्रुति के अनुसार मयूराष्टक की रचना करने के उपरान्त जब मयूर को कुष्ठ रोग हो गया तो इससे मुक्ति पाने के लिए उन्होंने भगवान् सूर्य की स्तुति में सौ श्लोकों की रचना की जिससे प्रसन्न होकर भगवान सूर्य स्वयं प्रकट हुए तथा मयूर को नीरोग होने का वर दिया। इस बात की पुष्टि काव्यप्रकाश की इस पंक्ति से भी होती है "आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्"। कहा जाता है कि जब मयूर ने—'शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्' इत्यादि सूर्यशतक के छठे श्लोक का उच्चारण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया तभी भगवान् सूर्य स्वयं प्रकट हुए थे। यह तो वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी मानते हैं कि सूर्य की किरणों का सेवन करने से समस्त चर्मरोग तथा कुष्ठ आदि का भी उपचार हो जाता है। अतएव सम्भवतः सूर्यशतक की रचना का एकमात्र उद्देश्य सूर्यभक्ति ही रहा हो।

कुछ विद्वानों का मत है कि वास्तव में सूर्यशतक की रचना का उद्देश्य सूर्य-भक्ति नहीं था वरन् उसकी रचना का एकमात्र उद्देश्य सम्राट् हर्षवर्धन को प्रसन्न करना था। अपने मत की पुष्टि में वह यह प्रमाण देते हैं कि हर्ष के समय में एक तो सूर्योपासना अत्यधिक प्रचलित थी जिसकी पुष्टि हर्ष के समय में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग के अभिलेखों से होती है। इसके अतिरिक्त हर्ष के मधुवन शिलालेख तथा बाण के हर्षचरित से भी इस बात की पुष्टि होती है कि उनके कुछ पूर्वज भी परम आदित्यभक्त थे। बाण ने अपने हर्षचरित में इस बात का उल्लेख किया है कि प्रभाकरवर्धन प्रतिदिन प्रातःकाल ही स्नान करके, श्वेत दुकूल पहनकर तथा श्वेत वस्त्र से सिर को ढँककर कुंकुम-पंक से निर्मित सूर्य मण्डल को अर्घ्य प्रदान करते थे। प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल पुत्रार्थ पवित्र एवं विनत होकर शुद्ध मन से जप के योग्य आदित्यहृदय मंत्र का जाप करते थे।[1] इन्हीं दो प्रमाणों के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों का विशेषरूप से यह आग्रह है कि सूर्यशतक की रचना वास्तव में हर्ष को प्रसन्न करने के उद्देश्य से की गई थी, अन्य किसी उद्देश्य से नहीं।

यद्यपि निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है किन्तु यदि हम भारतीय परंपरा के दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि मयूर ने भक्ति से ही प्रेरित होकर सूर्यशतक की रचना की होगी। इसका उल्लेख मयूर ने तो सूर्यशतक के एक सौ एक श्लोक में किया ही है, सूर्यशतक के टीकाकार अन्वयमुख ने भी इस बात का उल्लेख किया है

१. "निसर्गत एव च स नृपतिरादित्यभक्तो बभूव।......अजपच्च जप्यं सुचरितः प्रत्युषसि मध्यंदिने दिनान्ते चापत्यहेतोः प्राध्वं प्रयतेन मनसा जञ्जपूको मन्त्रमादित्यहृदयम्।" हर्षचरित, पृष्ठ २०२, चौखम्बा प्रकाशन।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि मयूर कवि ने जनकल्याण तथा आत्मिक वेदना से मुक्ति पाने के लिए ही सूर्यशतक का निर्माण किया था।

'मयूरो नाम महाकविरन्तःकरणादिसर्वावयवनिर्वृतिसिद्धये सर्वजनोपकाराय च······आदित्यस्य स्तुतिं श्लोकशतकेन प्रणीतवान्।

इसके अतिरिक्त वेदों में भी समस्त चर्मरोगों के विनाश के लिए सूर्योपासना को ही श्रेयस्कर कहा गया है। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण से हम यही मानने को वाध्य हैं कि मयूर ने भक्तिमात्र से प्रेरित होकर सूर्यशतक की रचना की थी।

मयूरविरचित अन्य पद्य

मयूर को 'मयूराष्टक' तथा 'सूर्यशतक' इन दो पूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त सुभाषित-संग्रहों में संगृहीत अन्य सोलह श्लोकों का रचयिता माना जाता है। वल्लभदेवकृत सुभाषितावली, शार्ङ्गधरकृत शार्ङ्गधर पद्धति तथा श्रीधरदास कृत सदुक्तिकर्णामृत में संकलित इन सोलह श्लोकों में से कुछ तो अत्यन्त सुन्दर हैं किन्तु कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जिनमें कोई विशेषता न होते हुए भी परवर्ती कवियों ने उद्धृत कर दिया है। इनमें से सात श्लोकों में शिव तथा पार्वती में परस्पर वार्तालाप है और वही मुख्यतः रोचक भी है। थामस ने इन सभी का एक साथ संग्रह अपने 'कवीन्द्रसमुच्चय'[1] नामक ग्रंथ में कर दिया है। सर्वथा भिन्न-भिन्न होने के कारण इन श्लोकों को हम निम्नलिखित दस भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) सात श्लोकों में शिव तथा पार्वती की द्यूतक्रीड़ा का वर्णन है। इनमें वक्रोक्ति नामक अलंकार है तथा उसीके उदाहरण के रूप में यह रुय्यक कृत

१. F. W. Thomas—Kavindra Samuccaya—Introduction, P. 67-68, Calcutta 1912

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'अलंकारसर्वस्व'[1] में उद्धृत किए गए हैं। यद्यपि वहाँ कवि का नाम नहीं दिया गया है किन्तु श्लोक वही सात हैं जो अन्य ग्रंन्थों में उपलब्ध होते हैं, हाँ इतना अवश्य है कि क्रम भिन्न है। क्वेकेनवास ने अपने ग्रंन्थ 'संस्कृत पोयम्स आफ मयूर'[2] में इनका जो क्रम दिया है उससे 'अलंकारसर्वस्व' का क्रम इस प्रकार भिन्न है। १, २, ४, ५, ३, ६ तथा अन्तिम सातवें श्लोक की प्रथम पंक्ति का पाठ क्वेकेनवास ने 'इत्थं पशुपति' आदि दिया है किन्तु अलंकार-सर्वस्व में 'इतिकृत पशुपति' इत्यादि पाठ मिलता है। संभवतः मयूरविरचित किसी अनुपलब्ध काव्यग्रंथ के यह मंगल श्लोक हैं क्योंकि अन्तिम श्लोक में की गई मंगलकामना भी इसी का संकेत करती है। जो भी हो यह श्लोक मयूर की अलंकार-मर्मज्ञता पर अवश्य प्रकाश डालते हैं तथा यों भी सुन्दर हैं।

(२) आगे का आठवाँ श्लोक सम्राट् हर्षवर्धन की प्रशंसा में लिखा गया है। इस श्लोक में श्लेषालंकार है तथा कांची तथा कोल देश पर सम्राट् हर्षवर्धन के विजय की भविष्यवाणी की गई है।

(३) नवें श्लोक में एक गाय तथा बछड़े का अत्यन्त वास्तविक एवं सुन्दर चित्रण है जो मयूर के प्रकृति-निरीक्षण एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण पर प्रकाश डालता है। यह श्लोक वल्लभदेव कृत सुभाषितावली में मयूर के नाम से उद्धृत किया गया है।

(४) आगे के दसवें श्लोक में दो रासभों की रति क्रीड़ा का वर्णन मिलता है। यह श्लोक वल्लभदेव कृत सुभाषितावली[3] में उद्धृत किया गया है।

(५) आगे के एक अन्य ग्यारहवें श्लोक में एक श्रान्त पथिक का वर्णन

---

१. अलंकारसर्वस्व—रुय्यक—पृष्ठ २२१-२२२ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, काव्यमाला सीरीज ३५, द्वि० सं०, १९३९

२. Quackenbos—Sanskrit Poems of Mayūra P. 230-,61-62 Columbia University Press, Newyork, 1917

३. Peterson—Subhāṣitāvalī of Ballabhdeo–Stanza 2422.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया गया है। इस श्लोक में भी कोई विशेष चारुत्व नहीं है। किन्तु पथिक के उत्तरीय का वर्णन इसमें अत्यन्त निपुणता से किया गया है। यह श्लोक 'सुभाषितरत्नभाण्डागार'[1] में मयूर कृत कहा गया है।

(६) क्रमशः द्वादश श्लोक में वियोग के दुःख का मार्मिक वर्णन किया गया है। यह श्लोक भी वल्लभदेवकृत सुभाषितावली[2] में उद्धृत किया गया है।

(७) तेरहवें श्लोक में भगवान् शिव द्वारा त्रिपुरदहन का वर्णन है। इसमें त्रिपुर के अन्तःपुरों में सम्भ्रान्त युवतियों का वर्णन है तथा उनको दुःखी देखकर भगवान् आशुतोष के करुणार्द्र होने का भी सुन्दर चित्रण किया गया है।

(८) आगे के क्रमशः चतुर्दश श्लोक में उमा के क्रोध का वर्णन है। ईर्ष्याविप्रलम्भ का सुन्दर चित्रण इस श्लोक में किया गया है। यह श्लोक सदुक्तिकर्णामृत में मयूर कृत कहा गया है।[3]

(९) आगे एक अन्य श्लोक में नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु के नखों का चित्रण किया गया है। तथा विष्णु के द्वारा हिरण्यकशिपु नामक राक्षस के वध का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह श्लोक भी 'सदुक्तिकर्णामृत'[4] में उद्धृत किया गया है।

(१०) अन्तिम सोलहवें श्लोक में बालकृष्ण के स्वप्न का वर्णन है। स्वप्न में भगवान् कृष्ण शिव, ब्रह्मा प्रभृति अनेक देवताओं को देखते हैं तथा उनसे आसन ग्रहण करने को कहते हैं। उनकी आवाज सुनकर यशोदा जाती हैं और कहती हैं कि हे कृष्ण! तुम क्या बड़बड़ा रहे हो। यह अन्तिम श्लोक भी सदुक्तिकर्णामृत में ही उद्धृत किया गया है। इस प्रकार यह सोलह श्लोक भी, जो मुक्तक हैं, मयूर रचित माने गए हैं।

---

१. Parab—Subhāṣitaratnabhandāgār P. 567, Stanza 21.

२. Peterson—Subhāṣitāvalī of Ballabhadeva, stanza 2045.

३. श्रीधरदास—सदुक्तिकर्णामृत १. २८. ५

४. श्रीधरदास...सदुक्तिकर्णामृत १. ४१. ३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शब्दलिंगार्थ चन्द्रिका

धनञ्जय की एक कृति पर 'शब्दलिंगार्थचन्द्रिका' नामक एक टीका को भी विलियम टेलर[1] मयूर की रचना मानते हैं किन्तु इस विषय में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने किस आधार पर इस मत का प्रतिपादन किया है। इस कारण किसी संतोषजनक प्रमाण के अभाव में हम यही मानने को बाध्य हैं कि यह मयूर की कृति नहीं है।

आर्यामुक्तामाला

मयूर को आर्यामुक्तामाला नामक एक अन्य ग्रंथ का भी लेखक बताया जाता है। इस मत का प्रतिपादन करने वालों में सर्वप्रथम हैं डा० ब्यूलर तथा उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने वाले आफ्रेच महोदय ने भी उनके मत को स्वीकार कर लिया है। आफ्रेच ने मयूर के ग्रंथों की सूची में आर्यामुक्तामाला का भी नामोल्लेख किया है[2]। ब्यूलर तथा आफ्रेच महोदय ने अपनी इस धारणा की पुष्टि में किन तथ्यों का अवलंबन लिया है, यह तो नहीं कहा जा सकता है किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रामक है। वास्तव में आर्यामुक्तामाला अठारहवीं शती के एक मराठी कवि रामानन्द मयूर अथवा मोरोपन्त की कृति है जिसे, भ्रमवश मयूर नाम देखकर, ब्यूलर ने मयूर की रचना मान ली है।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत साहित्य में मयूराष्टक, सूर्यशतक तथा सुभाषित संग्रहों में संकलित कुछ अन्य श्लोकों के अतिरिक्त उनकी कोई अन्य कृति यदि रही भी हो तो अब उपलब्ध नहीं है।

---

१. William Taylor—Catalogue Raisonne of Oriental Manuscripts into Govt. library, vol. 2, Page 131 (1860)

Quoted in Sanskrit Poems of Mayūra, Page 65.

२. Aufrecht Catalogues Catalogorum—Vol. I, P. 432.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३

सूर्यशतक

सूर्यशतक का संक्षिप्त विवरण तो मयूर की कृतियों का विवेचन करते समय हम पीछे दे चुके हैं किन्तु संस्कृत साहित्य में मयूर को विशेष स्थान प्रदान करने वाले इस लघु काव्य के लिए उतना ही विवेचन पर्याप्त नहीं है। वहाँ तो केवल इसकी रचना के उद्देश्यमात्र पर विचार किया गया था, अन्य विशेषताओं पर नहीं। सूर्यशतक की प्रसिद्धि ही इस बात की द्योतक है कि इस ग्रंथ में कुछ विशेषताएँ हैं जिसके कारण परवर्ती साहित्यशास्त्रियों तथा अलंकारशास्त्रियों ने इसकी ओर सम्मानपूर्ण दृष्टि-निक्षेप किया है। यहाँ हम सूर्यशतक का कुछ थोड़ा विवेचन करना अप्रासंगिक नहीं समझते हैं।

सूर्यशतक का सार

सूर्यशतक के एक सौ एक श्लोकों में से सौ श्लोकों में भगवान् सूर्य की आराधना की गई है तथा अन्तिम एक श्लोक में कवि मयूर ने इस बात का संकेत किया है कि यह शतक जनकल्याण एवं भक्तिभावना से प्रेरित होकर लिखा गया है।

सूर्यशतक का प्रत्येक श्लोक आशीषूरूप में है तथा प्रत्येक श्लोक में सूर्य, सूर्य की किरणों, सूर्याश्वों, सूर्य के रथ, सूर्यमण्डल अथवा सूर्य-सारथि से रक्षा, मंगल, धन अथवा शत्रु एवं आपत्तियों के विनाश की मंगल कामना की गई है। यद्यपि सामान्य रूप से तो सम्पूर्ण सूर्यशतक में सूर्य की ही स्तुति है किन्तु त्रिभुवनपाल-विरचित सूर्यशतक टीका के आधार पर हम इस स्तुति को भी प्रमुख छः भागों में विभक्त कर सकते हैं। इस वर्गीकरण के अनुसार प्रारम्भ के तैंतालीस श्लोकों में सूर्य-रश्मियों की वन्दना है जिसमें कहीं किरणों से धन, कहीं रक्षा, कहीं शत्रुओं के विनाश तथा कहीं पुनर्जन्म से मुक्ति-प्रदान करने की प्रार्थना है। कवि ने सूर्य की किरणों को मोक्ष का द्वार तथा योगियों के लिए सूर्य तक पहुँचने का उपाय भी बताया है। तदनन्तर श्लोक ४४-४९ में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूर्याश्वों के माहात्म्य का वर्णन है। वहाँ भी कहीं तो सूर्याश्वों के ही सौन्दर्यातिशय के चारुत्व का चित्रण किया है और कहीं अश्वों से रक्षा की प्रार्थना है तथा कहीं उनसे सभी मनुष्यों को प्रसन्नता प्रदान करने की अभिलाषा कवि ने प्रकट की है। श्लोक ५०–६१ में सूर्य-सारथि अरुण का विशेषरूप से वर्णन है तथा उन श्लोकों में अरुण की ही वन्दना की गई है। अरुण से भी कवि ने रक्षा तथा समृद्धि प्रदान करने की इच्छा प्रकट की है। एक श्लोक में तो अरुण को सूर्य के संसारभ्रमणरूपी महान् नाटिका के दिवस रूपी रंगमंच पर स्थित सूत्रधार की भाँति नाटिका का उद्‌घाटन करते हुए बताया है। श्लोक ६२–७२ में कवि मयूर ने सूर्य-रथ की प्रशंसा की है। सभी श्लोकों में कहीं रथ से समृद्धि की याचना है तो कहीं रक्षा की और कहीं-कहीं पाप अथवा शत्रुओं के विनाश की कामना है। इसके पश्चात् श्लोक ७३–८० में सूर्य-मण्डल को प्रशंसा की गई है। यहाँ सूर्य-मण्डल को योगियों के निर्वाण का एकमात्र द्वार तथा बन्ध से त्राण पाने के लिए सरलतम उपाय बताया गया है।

अन्तिम बीस श्लोकों में कोई क्रमगत विभाजन नहीं किया जा सकता। इन श्लोकों में विभिन्न प्रकार से भगवान् सूर्य के माहात्म्य को प्रकाशित करने का प्रयत्न ही कवि को सर्वथा ग्राह्य है। श्लोक ९१–९३ में भगवान् भास्कर की ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश से तुलना की गई है किन्तु श्लोक ८८ में उन्हें इन तीन देवताओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बताया गया है। अन्य देवताओं की अपेक्षा आदित्य से ही जगत् का अधिक मंगल होता है। श्लोक ८५, ९५ तथा ९६ में सूर्यदेव के अस्ताचल-गमन का चित्रण किया गया है। इसके विपरीत श्लोक ८७ में दिवस का चित्रण किया गया है। श्लोक ९४ में सूर्य की सर्वांगीण प्रभुता का निर्देश मिलता है। श्लोक ९९ में सूर्य की प्रमुख-प्रमुख वैदिक देवताओं से अभिन्नता भी स्वीकार की गई है। श्लोक १०० में कवि ने उनके स्वभाव एवं अतुल शक्ति का वर्णन किया है तथा उन्हें माता, पिता, गुरु एवं बान्धव से अभिन्न भी माना है। रक्षा, मंगल अथवा समृद्धि की प्रार्थना तो सभी श्लोकों में की गई है।

सावधानी से अध्ययन करने पर सूर्यशतक में कुछ विशेष तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं। सूर्य ही पृथ्वी से कर्षित करके पुनः वृष्टि द्वारा संसार को जल-प्रदान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करता है (श्लोक ९, १४, ३०, ७३, ९१, ९३), सूर्य ही पुनर्जन्म से मोक्ष प्रदान कर सकते हैं (श्लोक ९, १०, ११, २९, ७३, ८०, ८९), समस्त पापों को सूर्य ही दूर कर सकते हैं (श्लोक ६, १०, ११, २१, २७, ३३, ३६, ३९, ४७, ४८, ५१), सूर्य ही समस्त संसार के प्राण हैं तथा कल्याण करने वाले भी हैं (श्लोक ५९, ७७, ८०, ८७, ८८, ९७ तथा १००), अपने कार्यों के लिए सूर्य किसी अन्य देवता के प्रत्युत्तरदायी नहीं हैं (श्लोक ६, १९, ८४, ९७), सूर्य वेदों से अभिन्न हैं (श्लोक ८९) तथा सूर्य के द्वादश रूप संसार को शीघ्र ही नष्ट कर सकते हैं (श्लोक ९४)।

छठे श्लोक का भी अपना महत्त्व है जिसमें कुष्ठ रोग के कुछ चिह्नों का वर्णन है तथा सूर्य के द्वारा ही उसका निराकरण बताया गया है। इस श्लोक से समस्त चर्मरोगों में सूर्य की किरणों का सेवन लाभदायक होता है, इस प्रकार का वैज्ञानिक मत भी पुष्ट होता है।

सूर्यशतक में छंदोविधान

डा० व्यूह्लर[१] तथा मैक्समूलर[२] के अनुसार सूर्यशतक का छन्द शार्दूल-विक्रीडित है। 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द का लक्षण 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्' है जो सूर्यशतक के किसी भी श्लोक में घटित नहीं होता है। हाँ! 'मयूराष्टक' के पाँच श्लोकों (३, ५, ६-८) में अवश्य मयूर ने इस छन्द को अपनाया है। छन्दोविधान के विषय में निश्चय ही डा० व्यूह्लर तथा प्रो० मैक्समूलर को भ्रान्ति हो गई है। उनका यह मत या तो उचित पर्यवेक्षण पर आधारित नहीं है अथवा फिर उन्होंने सातवीं शताब्दी के मयूर के सूर्यशतक का अवलोकन न करके किसी अन्य सूर्यशतक पर दृष्टिपात किया होगा। जो भी हो उनका यह मत वास्तव में उचित नहीं है तथा सूर्यशतक का छन्द शार्दूलविक्रीडित न होकर स्रग्धरा है। स्रग्धरा छन्द का लक्षण है—

---

१. Buhler—Indian Antiquary, vol. I, P. 115 foot note.

२. Maxmuller—India what can it teach us? P. 330, Note 3.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।" इसमें प्रत्येक पाद में इक्कीस अक्षर होते हैं तथा सात अक्षरों के बाद यति होती है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि मयूर के पूर्व साहित्य में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग कवियों ने अल्प मात्रा में किया था। महाकवि कालिदास ने इस छन्द का प्रयोग केवल 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में दो स्थलों पर किया है। इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी इस छन्द का प्रयोग नहीं के बराबर किया है। कवि मयूर को ही सर्वप्रथम यह गौरव प्राप्त है कि अपनी एक सम्पूर्ण कृति की रचना एक अत्यन्त अप्रचलित छन्द में करके भी उन्होंने सर्वांगीण सफलता प्राप्त की।

सूर्यशतक के टीकाकार

सूर्यशतक की प्रसिद्धि के कारण इस पर परवर्ती अनेक टीकाकारों ने टीकाएँ लिखी हैं। आफ्रेच ने अपने कैटलोगस कैटलोगोरियम्[१] में सूर्यशतक की बाईस टीकाओं का उल्लेख किया है। इनमें से पंद्रह टीकाओं के टीकाकारों के नाम सर्वथा ज्ञात हैं तथा शेष सात टीकाकारों के नाम का भी पता नहीं है। जिन टीकाकारों के नाम ज्ञात हैं वे निम्नलिखित हैं—

(१) मधुसूदनकृत भावबोधिनी टीका।
(२) जगन्नाथकृत सूर्यशतक टीका।
(३) बल्लभदेवकृत सूर्यानुवादिनी टीका।
(४) यज्ञेश्वर शास्त्रीकृत सूर्यशतक टीका।
(५) त्रिभुवनपालकृत सूर्यशतक टीका।
(६) जयमंगलकृत सूर्यशतक टीका।
(७) रंगादेव कृत सूर्यशतक टीका।
(८) गंगाधर कृत सूर्यशतक टीका।
(९) बालमभट्ट कृत सूर्यशतक टीका।
(१०) हरिवंश विरचित सूर्यशतक टीका।
(११) गोपीनाथ विरचित सूर्यशतक टीका।

१. Aufrecht--Catalogus Catalogorium, vol. I P. 432-433.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१२) रामभट्ट विरचित सूर्यशतक टीका ।

(१३) अन्वयमुख कृत सूर्यशतक टीका ।

(१४) रामचन्द्र कृत सूर्यशतक टीका ।

(१५) लिंगय कृत सूर्यशतक टीका ।

इन पंद्रह टीकाओं में त्रिभुवनपालकृत सूर्यशतक टीका तथा यज्ञेश्वरशास्त्री कृत सूर्यशतक टीका, ये दो टीकाएँ ही विशेष प्रसिद्ध हैं तथा विभिन्न स्थानों पर इन्हीं टीकाओं से उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें से कुछ टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं, शेष अन्य टीकाएँ अप्रकाशित हैं।

सूर्यशतक के संस्करण

सूर्यशतक के सात संस्करणों के विषय में विभिन्न ग्रंथों से पता चलता है। ये सात संस्करण निम्न लिखित हैं—

(१) त्रिभुवनपाल की टीका सहित एक संस्करण काव्यमाला सीरीज में बम्बई से प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन दुर्गाप्रसाद तथा परब ने किया है। इसका प्रथम संस्करण ११८९ में प्रकाशित हुआ था तथा इसी का एक दूसरा संस्करण १९०० ई० में बम्बई से ही प्रकाशित हुआ है।

(२) एक अपूर्ण संस्करण, जिसमें सूर्यशतक के केवल प्रारम्भ के ७५ श्लोकों का संग्रह है, 'विद्योदय' नामक संस्कृत पत्रिका के पचीसवें वाल्यूम में १८९६ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

(३) जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित एक संस्करण, जिसमें कोई टीका नहीं है, १८८६ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। यह जीवानन्द के काव्यसंग्रह के दूसरे संस्करण में पृ० २७१-२९० पर प्रकाशित हुआ था।

(४) यज्ञेश्वर शास्त्री कृत एक संस्करण, जिसका व्यूह्लर[1] ने निर्देश किया है, १८७२ ई० से पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। इसके साथ यज्ञेश्वर शास्त्री कृत टीका भी थी।

१. Buhler—Indian Antiquary vol. I, P. 115, foot Note.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(५) कालीकृष्ण बहादुर द्वारा सम्पादित एक संस्करण, जिसको जान हेबर्लिन ने अपने 'काव्यसंग्रह' में संगृहीत किया है, कलकत्ता से १८४७ ई० में प्रकाशित हुआ था।

(६) अज्ञात सम्पादक द्वारा सम्पादित एक संस्करण, जिसका शीर्षक 'शतकावली' है, १८५० ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इसमें अमरुशतक, शान्तिशतक, सूर्यशतक तथा भर्तृहरि के तीन शतकों का संकलन है।

(७) एक अज्ञात संस्करण कलकत्ता में १८७४ ई० में प्रकाशित हुआ है। इसका शीर्षक है 'मयूरभट्ट कृत सूर्यशतक'।

सूर्यशतक की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं। आफ्रेच[1] ने तैंतीस हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त क्वेकेनबास[2] ने छः अन्य प्रतियों का उल्लेख किया है। इस प्रकार प्रकाशित संस्करणों के अतिरिक्त सूर्यशतक की लगभग चालीस हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं जो सूर्यशतक की प्रसिद्धि की द्योतक हैं।

'अन्य सूर्यशतक'

मयूर के सूर्यशतक के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं में अन्य पाँच सूर्यशतकों की रचना की गई है। यहाँ इसका संक्षेप में उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, क्योंकि अन्य सूर्यशतकों से इस विषय में भ्रान्ति हो सकती है कि कौन सा सूर्यशतक सातवीं शताब्दी के कवि मयूर की कृति है और कौन सूर्यशतक अन्य कवियों की। सम्भव है 'सूर्यशतक' की प्रसिद्धि के ही कारण साहित्य में आगे चलकर अन्य कवियों ने भी सूर्यशतक नाम से सूर्य-स्तोत्रों की रचना की हो। ये पाँच सूर्यशतक निम्न लिखित हैं—

---

१. Aufrecht—Catalogus Catalogorum vol. I, P. 732 and vol. II P. 175.

२. Quackenbos—Sanskrit Poems of Mayūra, p. 101.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१) गोपालशर्मन् कृत सूर्यशतक कलकत्ता से १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसका उल्लेख आफ्रेच ने भी अपने 'कैटालोगस कैटालोगोरियम्' में किया है।

(२) श्रीश्वर विद्यालंकार कृत एक सूर्यशतक, जो संभवतः प्रकाशित नहीं हुआ है, की एक हस्तलिखित प्रति राजेन्द्रलाल मित्र को प्राप्त हुई थी तथा उन्होंने इसका उल्लेख किया है[1]।

(३) तीसरा 'सूर्यशतक' राघवेन्द्र सरस्वती नामक किसी कवि की रचना है। इसकी रचना १५९२ ई० में हुई थी तथा पिटरसन को इसकी एक हस्तलिखित प्रति भी प्राप्त हुई थी।[2]

(४) एक अन्य सूर्यशतक लिंग कवि की रचना है जिसकी हस्तलिखित प्रति विलियम टेलर को प्राप्त हुई थी। टेलर ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है--'सौ श्लोक टीका सहित'। सम्भव है कि यह सूर्यशतक कोई मौलिक रचना न हो अपितु लिंग कवि ने मयूर के सूर्यशतक पर ही टीका लिखी हो क्योंकि लिंगय नामक सूर्यशतक के टीकाकार का भी उल्लेख हमें प्राप्त होता है।

(५) पाँचवाँ तथा अन्तिम सूर्यशतक तेलगू भाषा में है जिसका शीर्षक 'सूर्यशतक्रमु' है। इसका प्रकाशन मद्रास से १८९७ ई० में हुआ था तथा इस ग्रंथ में सौ के स्थान पर एक सौ पाँच श्लोक हैं।

---

१. Notices of Sanskrit Manuscripts, vol. 7, page 113, N. 2340.

२. Catalogus of Sanskrit Manuscripts, in the library of His Highness the Maharaja of Alwar No. 2348 (Bombay 1892).

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

४

धार्मिक साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास

भारतीय विचारधारा में धर्म का विशेष महत्त्व है। भारतीय साहित्य के प्रारम्भिक ग्रंथ वेद धर्मप्रधान ही हैं। धर्म का जितना व्यापक दृष्टिकोण भारतीयों ने अपनाया है उतना व्यापक दृष्टिकोण संसार की अन्य किसी जाति ने नहीं अपनाया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थों में धर्म ही परम पुरुषार्थ है क्यों कि धर्म का नित्यत्व वेदों से प्रमाणित होता है। मनु ने तो मनुस्मृति में धर्मविहीन मनुष्य को पशु तुल्य माना है।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

समय परिवर्तन के साथ-साथ धार्मिक परिवर्तन भी हुआ तथा वैदिक काल के अनेक देवताओं का स्थान आगे चलकर अनेक नवीन देवताओं ने ले लिया। अनेक देवी देवताओं की उत्पत्ति के साथ ही साथ उनके उपासक विभिन्न संप्रदायों ने भी जन्म लिया जो केवल धर्म-क्षेत्र तक ही सीमित न रह सके। साहित्य एवं दर्शन पर भी इन संप्रदायों का प्रभाव पड़ा। प्रत्येक कवि किसी न किसी देवता-विशेष की आराधना करने के कारण किसी विशेष धार्मिक सम्प्रदाय का अनुयायी होता था। कुछ समय तक तो कवियों ने अपने को इन धार्मिक प्रपञ्चों से सर्वथा पृथक् रखा और अपने उपास्य देवताओं के प्रति अपनी भक्ति को वह अपने ग्रंथ के मंगल श्लोकों से ही प्रकाशित कर देते थे किन्तु कुछ समय पश्चात् जब धार्मिक संप्रदायों में भी प्रतिद्वन्द्विता की भावना आ गई तो कवियों ने भी अपने-अपने उपास्य देवताओं की स्तुति में पृथक-पृथक् काव्यग्रन्थों की रचना प्रारंभ कर दी। इस प्रकार की रचनाओं के सम्भवतः दो उद्देश्य थे—एक तो अपने इष्ट देवता की प्रशंसा और दूसरा अपने इष्ट-देवता के प्रति जनसाधारण को आकर्षित करना।

वैदिक काल के पश्चात् जिन धार्मिक संप्रदायों का अभ्युदय हुआ उनमें से मुख्य सम्प्रदाय चार थे (१) शैव, (२) वैष्णव, (३) सौर तथा (४) शाक्त। इसके अतिरिक्त कुछ भक्त ऐसे भी थे जो प्रायः सभी देवताओं को समान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महत्त्व प्रदान करते थे। उपर्युक्त चार संप्रदायों में से भी वैष्णव, शैव तथा सौर सम्प्रदाय आगे चलकर विशेष प्रचलित हुए। इनमें प्रत्येक संप्रदाय के अनुयायी अपने देवता को अत्यधिक शक्तिशाली समझते थे। इस प्रकार विभिन्न देवताओं की उसासना में लिखा गया साहित्य आगे चलकर इतना विशाल हो गया कि उसे 'धार्मिक साहित्य' अथवा 'स्तोत्र साहित्य' कहा जाने लगा।

स्तोत्र साहित्य की उत्पत्ति का एक कारण और भी हो सकता है। वैदिक काल के पश्चात्, संभव है, वेद के गूढ़ तत्त्वों को समझना जनसाधारण को दुष्कर प्रतीत हुआ हो। वैसे भी भारतीय संस्कृति के अनुसार सभी जातियों के लिए वेद-पाठ करना वर्जित है। कवियों को समाज की इस समस्या की प्रतीति हुई होगी और तब उन्होंने जनकल्याण के लिए वेद-तत्त्वों का अपनी भाषा में उपनिबन्धन किया होगा। इस प्रकार अपने देवताओं की शक्तियों का पृथक्-पृथक् वर्णन करने की परम्परा-सी चल पड़ी होगी जिसके कारण परवर्ती कवियों ने भी स्तोत्र-ग्रंथों की रचना की होगी।

वैसे तो स्तोत्र साहित्य का भण्डार अत्यधिक समृद्धिशाली है तथा अनेक भक्त-कवियों ने समय-समय पर अपनी अकुण्ठित लेखनी द्वारा इस साहित्य की वृद्धि करने का ही प्रयत्न किया है किन्तु इनमें से सभी स्तोत्रग्रन्थ समान महत्त्व के नहीं हैं। स्तोत्र-साहित्य को यह विशाल स्वरूप प्रदान करने में जिन भक्त-कवियों ने विशेष सहयोग दिया है, यहाँ संक्षेप में उनका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। इससे स्तोत्र-साहित्य के क्रमिक विकास का भी ज्ञान हमें हो जायगा। स्तोत्र-साहित्य के विकास में निम्नलिखित कवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(१) अश्वघोष—उपलब्ध स्तोत्र ग्रन्थों में अश्वघोष कृत 'गण्डीस्तोत्र-गाथा' नामक स्तोत्र ग्रंथ ही स्तोत्र साहित्य की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। यह २९ लम्बे-लम्बे स्रग्धरा छन्दों का एक लघुकाव्य है। पं० बलदेव उपाध्याय इसके अश्वघोष कृत होने में भी सन्देह करते हैं तथा उनका मत है कि भाषा तथा शैली के स्पष्ट विरोध में यह 'बुद्धचरित' के रचयिता की कृति नहीं हो सकती है।[१]

१. पंडित बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. १९३, १९५८ संस्करण।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(२) मयूर—अश्वघोष के पश्चात् सातवीं शताब्दी तक लगभग ५०० वर्षों के समय का स्तोत्र-साहित्य का इतिहास सर्वथा अन्धकारमय है। इस समय में स्तोत्रकाव्य की रचना तो अवश्य हुई होगी किन्तु आज हमें ऐसा कोई ग्रंथ नहीं प्राप्त होता है जिसका उल्लेख किया जा सके। मयूर कृत 'सूर्यशतक' स्तोत्र-साहित्य का एक प्रमुख ग्रंथ है और इसमें सौ स्रग्धरा छन्दों में भगवान् सूर्य की काव्यात्मक ढंग से स्तुति की गई है।

(३) बाण—मयूर के समसामयिक सातवीं शताब्दी के 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' गद्यकाव्य के रचयिता महाकवि बाण ने 'चण्डीशतक' की रचना की है। इसमें १०२ छन्दों में देवी चण्डी की स्तुति की गई है तथा महिषासुर वध का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कुछ विद्वान् इसे महाकवि बाण-भट्ट की रचना न मानकर पन्द्रहवीं शती के वामनभट्ट बाण की रचना मानते हैं। यदि यह वामनभट्ट बाण की रचना होगी तो इसका समय भी पंद्रहवीं शताब्दी ही होगा।

(४) शंकराचार्य—भगवान् शंकराचार्य दार्शनिक होने के साथ-साथ एक महान् धार्मिक कवि भी थे। स्तोत्र-साहित्य में इनके नाम से लगभग २०० स्तोत्र-काव्यों का उल्लेख मिलता है, किन्तु इतना निश्चित है कि यह सभी स्तोत्र ग्रंथ आदि शंकराचार्य के नहीं हैं और इनमें से अधिकतर रचनाएँ परवर्ती शंकर नामधारी कवियों की कृतियाँ हैं। जिन स्तोत्रग्रन्थों पर अधिक विश्वास किया जा सकता है वह (१) शिवापराधक्षमापनस्तोत्र, (२) देव्यपराधक्षमापन-स्तोत्र, (३) भवान्यष्टक तथा (४) आनन्दलहरी है, जिन्हें सम्भव है आदि शंकराचार्य ने ही लिखा हो। शंकराचार्य का समय ७८८-८२० ई० माना जाता है तथा वेदान्तदर्शन में इनका विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(५) आनन्दवर्धन—ध्वनिकार आनन्दवर्धन के विषय में हम अधिक निश्चिन्त हैं। इन्होंने 'देवीशतक' नामक स्तोत्रग्रन्थ की रचना की है। जिसमें १०१ अथवा इससे अधिक श्लोक हैं। इस विषय में कोई सन्देह न होने का मुख्य कारण यह है कि 'देवीशतक' के १०१ श्लोक में आनन्दवर्धन ने अपने पिता 'नोण' का नामोल्लेख किया है।

(६) उत्पलाचार्य—दशम शताब्दी के प्रसिद्ध शैव दार्शनिक तथा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका' के रचयिता उत्पलाचार्य ने 'शिवस्तोत्रावली' की रचना की है, जिसमें भगवान् शिव की स्तुति की गई है।

(७) कुलशेखर—दशम शतक के वैष्णव धर्मावलम्बी कवि कुलशेखर ने भी अपने इष्टदेव विष्णु की आराधना में 'मुकुन्दमाला' नामक स्तोत्रग्रन्थ की रचना की जिसमें कुल बाइस श्लोक हैं।

(८) पुष्पदन्त—दशम शतक के ही शैव कवि आचार्य पुष्पदन्त ने भगवान् शिव की स्तुति में 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' की रचना की है जिसमें चालीस छंद हैं।

(९) यामुनाचार्य—विशिष्टाद्वैत वेदान्त के संस्थापक रामानुजाचार्य के गुरु यामुनाचार्य भी ग्यारहवीं शताब्दी के एक भक्त कवि थे। इनका स्तोत्रग्रंथ 'स्तोत्ररत्न' अथवा 'आलवन्दार' नाम से विख्यात है। यामुनाचार्य का तामिल नाम अलवन्दार था और सम्भवतः इसी कारण इनका स्तोत्रग्रंथ भी इसी नाम से विख्यात हुआ।

(१०) बिल्वमंगल अथवा लीलांशुक—ग्यारहवीं शताब्दी के भक्त कवि बिल्वमंगल, जिन्हें लीलांशुक भी कहा जाता है, भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने अपने इष्टदेवता की आराधना में 'कृष्णकर्णामृत' अथवा 'कृष्णलीलामृत' नामक स्तोत्रकाव्य लिखा है।

(११) श्रीहर्ष—'नैषधीयचरित' तथा 'खण्डनखण्डखाद्य' के रचयिता श्रीहर्ष भी धार्मिक कवियों की श्रेणी में आते हैं। बारहवीं शती में इन्होंने 'सुप्रभातस्तोत्र' की रचना की थी। इसको कुछ विद्वान सातवीं शती के बाण तथा मयूर के आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन की रचना मानते हैं।

(१२) जगद्धरभट्ट—चौदहवीं शताब्दी के भक्त कवि जगद्धरभट्ट का स्तोत्रग्रन्थ 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि' भी स्तोत्रसाहित्य में अपना स्थान रखता है। इसमें भगवान् शिव की स्तुति अत्यन्त सुरुचिपूर्ण एवं उत्तम ढंग से की गई है।

(१३) माधव-भट्ट—सोलहवीं शताब्दी के कवि माधवभट्ट भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे। इनका स्तोत्रग्रन्थ अपने ढंग का अनोखा है। यह कृष्ण और गोपियों की विशेष लीला के आधार पर लिखा गया लघुकाव्य है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१४) मधुसूदन सरस्वती—सोलहवीं शताब्दी के एक अन्य भक्त कवि मधुसूदन सरस्वती परम-वैष्णव थे। १०२ पद्यों के अपने ग्रन्थ 'आनन्दमन्दाकिनी' में इन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान् विष्णु के स्वरूप का नितान्त स्निग्ध वर्णन किया है।

(१५) वेंकटाध्वरि—सत्रहवीं शताब्दी के वेंकटाध्वरि कवि द्वारा लिखा गया 'लक्ष्मीसहस्र' संभवतः स्तोत्रसाहित्य के सभी ग्रन्थों से विशालकाय है। देवी लक्ष्मी के ललित अंगों का वर्णन इस स्तोत्र में एक हजार श्लोकों में प्राप्त होता है।

(१६) पण्डितराज जगन्नाथ—'रसगंगाधर' के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ भी स्तोत्रसाहित्य के एक स्तम्भ हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी है तथा इन्होंने (१) करुणालहरी (२) गंगालहरी (३) अमृतलहरी (४) लक्ष्मी लहरी (५) सुधालहरी नामक पाँच स्तोत्रग्रन्थों की रचना की है।

इन स्तोत्र ग्रन्थों के अतिरिक्त लक्ष्मण आचार्यकृत 'चण्डीकुच पञ्चाशिका', गोकुलनाथ कृत 'शिवशतक' गोपालशर्मन् कृत 'सूर्यशतक' तथा दो अज्ञात कवियों द्वारा लिखे गए 'अम्बाष्टक' एवं 'पञ्चस्तवी' नामक स्तोत्रग्रन्थ भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रथम शताब्दी ईस्वी से अश्वघोष के समय से सत्रहवीं शताब्दी तक स्तोत्रसाहित्य के विकास का यह संक्षिप्त इतिहास है जिसमें प्रमुख भक्त कवियों के स्तोत्रों का उल्लेख किया गया है।

सूर्यस्तोत्रों में सूर्यशतक का स्थान

स्तोत्रसाहित्य का सामान्य रूप से निरूपण कर लेने के पश्चात् अब हमें यह निर्धारित करना और शेष रह गया है कि मयूर कृत 'सूर्यशतक' का सूर्य स्तोत्रों में क्या स्थान है। सूर्य की स्तुति तो वैदिक काल से ही होती रही है तथा इसमें सन्देह नहीं है कि समय-समय पर अनेक भक्त कवियों ने भगवान् सूर्य की स्तुति में स्तोत्रों की रचना की है। यदि हम वैदिक काल के अतिरिक्त केवल साहित्यिक युग पर दृष्टिपात करें तो संस्कृत साहित्य के आदि ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण' में भी हमें भगवान् सूर्य की स्तुति में लिखे गए 'आदित्य-हृदयस्तोत्र' के दर्शन होते हैं। परवर्ती साहित्य में भी मयूर कृत 'सूर्यशतक'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के अतिरिक्त लगभग अन्य पाँच सूर्यशतक विभिन्न कवियों द्वारा लिखे गए हैं तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने भी सूर्यभगवान् की स्तुति में 'सुधालहरी' नामक सूर्यस्तोत्र की रचना की है किन्तु मयूरकृत सूर्यशतक' ही अन्य सूर्यस्तोत्रों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है और इसके कई कारण हैं।

'सूर्यशतक' स्तोत्र साहित्य की दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से। अन्य सभी सूर्यस्तोत्रों का महत्त्व केवल धार्मिक दृष्टि से है और उनके भीतर वह काव्य-सौन्दर्य नहीं आसका है जो हमें मयूर के 'सूर्यशतक' में मिलता है। साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में परवर्ती साहित्यकारों एवं आलंकारिकों ने सूर्यशतक से पद्य उद्धृत किए हैं। सातवीं शताब्दी में सूर्यशतक की रचना के पश्चात् नवीं शताब्दी में ही आनन्दवर्धन ने सूर्यशतक के दो श्लोक उद्धृत किए हैं, जिनमें से एक श्लोक को उन्होंने उत्तम काव्य के उदाहरण में उद्धृत किया है। दशम् शताब्दी के कवि क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ कविकण्ठाभरण में सूर्यशतक से श्लोक उद्धृत किए हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्यशतक उस समय तक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था किन्तु अन्य सूर्यस्तोत्रों के विषय में ऐसा नहीं है।

इसके अतिरिक्त 'आदित्यहृदयस्तोत्र' को छोड़कर अन्य सभी सूर्यस्तोत्रों से मयूरकृत 'सूर्यशतक' प्राचीन भी है। केवल सूर्यस्तोत्रों में ही नहीं अपितु यदि हम 'गण्डीस्तोत्रगाथा' को अश्वघोष की कृति न मानें, जैसा कि अनेक विद्वानों का मत है, तो 'सूर्यशतक' उपलब्ध स्तोत्रों में सबसे अधिक प्राचीन स्तोत्र-ग्रंथ माना जा सकता है और इस दशा में तो स्तोत्र-साहित्य का आदि ग्रंथ होने से उसका महत्त्व और भी अधिक हो जायगा।

संस्कृत साहित्य को मयूराष्टक तथा 'सूर्यशतक' के अतिरिक्त मयूर की और कोई देन नहीं है किन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि काव्यमर्मज्ञ जितना अधिक मयूर से परिचित हैं उतना संस्कृत साहित्य के कुछ महान् कवियों से भी परिचित नहीं हैं। मयूर को अनेक स्थलों पर कालिदास, भास तथा बाण आदि के समान सम्मानित किया गया है। उदाहरण के लिए जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव' के निम्नश्लोक को ही लीजिए

कर्णपूरो मयूरः। भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः॥ आदि

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मयूर के इस सम्मान तथा गौरव का कारण उनके कीर्तिस्तम्भ 'सूर्यशतक' की अलंकृत भाषा एवं अलंकार योजना है जो स्तोत्र साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

सूर्यशतक की रचना के पश्चात् ही स्तोत्र साहित्य में सूर्यशतक नामधारी पाँच सूर्यस्तोत्रों की रचना हुई है और अधिक सम्भावना इसी बात की है कि सूर्यशतक की प्रसिद्धि देखकर परवर्ती कवियों ने इसी नाम से रचनाएँ करना प्रारम्भ कर दी होंगी किन्तु फिर भी 'सूर्यशतक' पर इन रचनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ सका और वह आज भी अन्य सूर्यस्तोत्रों की अपेक्षा सबसे अधिक प्राचीन एवं प्रसिद्ध है। इसका कारण मयूर की वैदग्ध्यपूर्ण कल्पनाएँ हैं जो पाठक को इस बात का आभास नहीं होने देती हैं कि वह किसी स्तोत्र-ग्रन्थ का अनुशीलन कर रहा है। उसे सदैव यही प्रतीत होता है कि वह किसी सुन्दर काव्य का अध्ययन कर रहा है।

इस प्रकार अपनी कुछ प्रमुख विशेषताओं के कारण सूर्यशतक का सूर्यस्तोत्रों में एक विशिष्ट स्थान है जो अन्य सूर्यस्तोत्रों का नहीं है। सूर्यस्तोत्रों में 'सूर्यशतक' को वही स्थान प्राप्त है जो नाटकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' तथा महाकाव्यों में 'रघुवंश', 'शिशुपालवध' को प्राप्त है। सूर्यशतक निस्सन्देह अपनी विशेषताओं के कारण अद्वितीय एवं अनुपम है। स्तोत्र साहित्य के अन्य किसी ग्रंथ की इससे तुलना नहीं की जा सकती है।

५

मयूर की शैली

मयूर के जीवन-वृत्त तथा उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब हम उनकी रचना-शैली, भाषा एवं अलंकार-योजना पर सरलता से विचार कर सकते हैं। उनकी शैली का विवेचन प्राप्त दो पूर्ण कृतियों 'मयूराष्टक' तथा 'सूर्यशतक' के साथ ही साथ सुभाषित संग्रहों में संकलित मयूर विरचित कुछ अन्य पद्यों के आधार पर किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके पूर्व कि हम इनकी शैली पर विचार करें, हमारे लिए इस तथ्य का ज्ञान नितान्त आवश्यक हो जाता है कि शैली अथवा रीति शब्द का प्रयोग वास्तव में किन अर्थों में किया जाता है। संस्कृत साहित्य में 'रीतिवाद' एक विशेष सम्प्रदाय ही है जिसके संस्थापक वामन ने रीति अथवा शैली को ही काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया है। वामन के अनुसार एक विशेष प्रकार की पद-रचना ही रीति है।[1] वामन ने ही आगे चलकर विशेष का अर्थ गुण किया है[2]। और वही काव्य की आत्मा है। इस प्रकार एक विशेष प्रकार की पद-रचना को हम रीति कह सकते हैं। इसी को 'दण्डी' ने 'मार्ग' शब्द से व्यवहृत किया है।

कवि मयूर बाण के समसामयिक कवि थे तथा निश्चय ही बाण की समास-बहुल रचना का उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इनकी रचना की विशेषता है—समास-बहुलता एवं दुरूहता। प्रायः वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो देखने में कठिन होते हैं किन्तु व्युत्पत्ति के आश्रय से सरलतापूर्वक समझे जा सकते हैं। मयूर को वामन तथा दण्डी द्वारा निर्दिष्ट गौडी रीति का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। वामन के मतानुसार ओज तथा कान्ति गुणों से युक्त रचना-परिपाटी को गौडी रीति का विषय समझना चाहिए।[3] दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में दुरूह किन्तु व्युत्पत्ति के आश्रय से समझ में आ जाने वाले शब्दों से युक्त रचना को गौड़ी रीति का क्षेत्र माना है।[4] आचार्य आनन्दवर्धन ने यद्यपि स्पष्टरूप से रीतियों के विषय में अधिक नहीं कहा है किन्तु 'दीर्घसमासा संघटना' से गौडी रीति की ओर ही इंगित किया है।[5]

---

१. विशिष्टपदरचना रीतिः। (काव्यालंकार सूत्र २।७)

२. विशेषो गुणात्मा। (काव्यालंकार सूत्र, २।८)

३. ओजः कान्तिमती गौडी (काव्यालंकार सूत्र, २।१२)

४. अनुप्रासादिगौडैस्तादिष्टं बन्धगौरवात्। वैदर्भैर्मालतीदाम लंघितं भ्रमरैरति॥
काव्यादर्श १।४४, पृ० ३०, दरभंगा से १८५७ में प्रकाशित

५. असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा संघटनोदिता।
(ध्वन्यालोक, ३।५)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने ओज गुण से युक्त समासबहुल तथा शब्दाडम्बर-युक्त पद-रचना को गौडी रीति का प्रतिपाद्य विषय माना है[1]।

पूर्वोक्त सभी आचार्यों की परिभाषाओं का सारांश यह है कि गौडी रीति ओज तथा कान्ति गुणों से युक्त, दुरूह शब्दों वाली, शब्दाडम्बरयुक्त तथा दीर्घ समासों से पूर्ण पदरचना कही जा सकती है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हमें शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि उपरोक्त सभी गुण हमें मयूर की रचनाओं में प्राप्त हैं। शब्दाडम्बर मयूर को विशेष प्रिय है तथा अर्थ के अनुकूल श्रुतिकटु वर्गों के प्रयोग से प्रभाव उत्पन्न करने में वह अत्यन्त निपुण है।

मयूर की रचनाओं में हमें गौड़ी रीति के सभी लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी रचना समासबहुल तो है ही साथ ही साथ उसमें ओज गुण भी प्रस्फुटित हुआ है। उदाहरण के लिए निम्न श्लोक :--

मौलीन्दोर्मैष मोषीद् द्युतिमिति वृषभांकेन यः शङ्कितेव
प्रत्यग्रोद्‌घटिताम्भोरुहकुहरगुहासुस्थितेनेव धात्रा।
कृष्णेन ध्वान्तकृष्णस्वतनुपरिभवत्रस्तुनेव स्तुतोऽलं
त्राणायस्तात्तनीयानपि तिमिररिपोः स त्विषामुद्‌गमो वः॥

गौड़ी रीति की एक अन्य विशेषता दुरूह शब्दों का प्रयोग बतायी गई है और मयूर की रचना में इसका भी अभाव नहीं है। प्रायः मयूर ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो अत्यन्त क्लिष्ट होते हैं तथा व्युत्पत्ति के आश्रय से ही समझे जा सकते हैं। सूर्यशतक में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है। सूर्य के लिए ब्रध्नपाद, अहिमांशु, अहिमरुचि तथा अशिशिरकिरण शब्दों का प्रयोग अत्यन्त क्लिष्ट है और वह केवल व्युत्पत्ति से समझा जा सकता है। यहाँ सभी शब्द यद्यपि सूर्य के पर्यायवाची हैं किन्तु उन्हें सरलता से नहीं समझा जा सकता है। इसी प्रकार का प्रयोग कुछ अन्य स्थलों पर भी किया

---

१. ओजः⋯आडम्बरः पुनः।
समासबहुला गौडी⋯⋯॥—साहित्यदर्पण, पृ० ४६७, निर्णयसागर प्रेस।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है, जहाँ कमल के लिए अब्जन्मन् शब्द, सुमेरु पर्वत के लिए हेमाद्रि शब्द तथा श्लोक ६० में 'कष्ट' के लिए पथ्येतराणि शब्द प्रयुक्त है।

विश्वनाथ के अनुसार गौड़ी रीति की एक अन्य विशेषता है, शब्दाडम्बर। शब्दाडम्बर से सम्भवतः विश्वनाथ का तात्पर्य 'शब्दोंके प्रतिध्वनित क्रम' से है। मयूरकृत सूर्यशतक के श्लोक ३३, ३६ तथा ७० में गौड़ी रीति की यह विशेषता विशेषरूप से पायी जाती है जिनमें क्रमशः भ, द्य तथा द शब्दों का प्रयोग २८, १९ तथा १८ बार प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण के लिए सूर्यशतक का तैंतीसवाँ श्लोक उल्लेखनीय है—

भूत्वा जम्भस्य भेत्तुः ककुभि परिभवारम्भभूः शुभ्रभानो-
र्बिभ्राणा बभ्रुभावं प्रसभमभिनवाम्भोजजृम्भाप्रगल्भा।
भूषा भूयिष्ठशोभा त्रिभुवनभवनस्यास्य वैभाकरी प्राग्
विभ्रान्ति भ्राजमाना विभवतु विभवोद्भूतये सा विभा वः॥

ऊपर दिए गए उदाहरणों में गौडी रीति की प्रायः सभी विशेषताओं का समावेश हमें प्राप्त हो जाता है। अतः हम मयूर कवि को निस्सन्देह गौड़ी रीति का प्रतिनिधि कवि मान सकते हैं। ये अर्थ के अनुकूल अनेक श्रुति कटु वर्णों का प्रयोग करने में अत्यन्त निपुण हैं। एक ही पद्य में भाव-परिवर्तन करने के लिए ध्वनि-परिवर्तन करना भी इन्हें रुचिकर है। दुरूह शब्दों का प्रयोग भी इनकी भाषा में पाया जाता है किन्तु इतना सब होते हुए भी इनके काव्य का चारुत्व नहीं समाप्त हुआ है। इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं समास-बोझिल तथा श्लेषयुक्त शैली के कारण इनकी भाषा थकानेवाली हो गई है। किन्तु एक तो इस प्रकार के उदाहरणों की संख्या अत्यन्त न्यून है तथा इसके अतिरिक्त इस प्रकार के स्थलों पर भी यदि हम कवि का भाव समझने की चेष्टा करें तो हमें सौन्दर्य एवं रस की हो अनुभूति होगी। कहीं-कहीं यदि उनकी भाषा कष्टसाध्य हो गई है तो वह मयूर का कोई मौलिक दोष नहीं है, इस प्रकार का प्रयोग तो हमें बाण की रचनाओं में भी मिलता है जिसे वह अपनी काव्य कुशलता एवं सुन्दर चित्रण के कारण ही बचा सके हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मयूर की अलंकार योजना

मयूर की भाषा प्रायः अलंकृत है। उन्होंने अपने काव्यों में प्रायः सभी प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। उनके समय में अलंकारों को ही काव्यात्मा माना जाता था। अतएव अलंकृत-रचना को ही उत्तमकोटि की रचना समझा जाता था। मयूर ने अपने ग्रंथों में श्लेष, उपमा, रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, दीपक, तुल्ययोगिता तथा विरोधालंकार का प्रयोग विशेषरूप से किया है। इनमें से श्लेष, उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा तो संभवतः इन्हें अधिक प्रिय हैं। श्लेष के कारण इनकी भाषा कहीं-कहीं अत्यन्त दुरूह एवं बोझिल हो गई है। संभवतः बाण के समसामयिक होने के कारण भाषा में यह स्वभाव-सुलभ दुरूहता आ गई है। इतना सब होते हुए भी इनकी अनेक कल्पनाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। मयूर ने अपने काव्यों में जिन अलंकारों का प्रयोग किया है उनका संक्षिप्त विवरण दे देना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। इससे उनकी रचना-शैली तथा भाषा आदि का विवेचन भी कुछ स्पष्ट हो जायगा। मयूर द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रसिद्ध अलंकार निम्न हैं—

अनुप्रास—

अनुप्रास अलंकार संभवतः संस्कृत साहित्य में सबसे अधिक प्रचलित अलंकार है। एक ही वर्ण का जहाँ पुनः-पुनः आवर्तन किया जाय वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। वैसे तो मयूर ने अनेक श्लोकों में इस अलंकार का प्रयोग किया है तथापि प्रमुखरूप से सूर्यशतक के श्लोक ६, ३३, ३६ तथा ७०, जिनमें एक ही शब्द का आवर्तन हुआ है, उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए सूर्यशतक का ७० वाँ श्लोक लिया जा सकता है जिसमें द वर्ण १९ बार आया है।

निःस्पन्दानां विमानावलिविततदिवां देववृन्दारकाणां
वृन्दैरानन्दसान्द्रोद्यममपि वहतां विन्दतां वन्दितुं नो।
मन्दाकिन्याममन्दः पुलिनभृति मृदुर्मन्दरे मन्दिराभे
मन्दारैर्मण्डितारं दधदरि दिनकृत्स्यन्दनः स्तान्मुदे वः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्लेष—

श्लेषालंकार का प्रयोग मयूर ने अपने काव्यों में विशेषरूप से किया है। कहीं-कहीं तो इस अलंकार से इनकी भाषा के चारुत्व में वृद्धि होती है, किन्तु कुछ स्थानों पर तो भाषा श्लेष-बोझिल हो गई है। सूर्यशतक के ४, ९, १०, १५, १८, २०, २४, २५, २८, ३२, ३५, ४२, ४७, ५२, ५३, ६४, ६८, ७२, ७९, ९२ तथा ९३ आदि इक्कीस श्लोकों में श्लेषालंकार प्रयुक्त हुआ है। इन श्लोकों में कहीं तो सम्पूर्ण श्लोक ही द्व्यर्थक हैं और कहीं-कहीं श्लेष के कुछ चरण द्व्यर्थक हैं।

उपमा—

मयूर उपमा अलंकार के वर्णन में पर्याप्त निपुण हैं। इन्होंने सूर्य की उपमा जहाँ-जहाँ अन्य वस्तुओं से दी है वह सभी श्लोक अत्यन्त सुन्दर एवं भावपूर्ण हैं। वैसे तो सूर्यशतक के लगभग सोलह श्लोकों में उपमालंकार है किन्तु उनमें से कुछ विशेष सुन्दर हैं। श्लोक १४, २६, ३१, ३४ तथा ५० विशेषरूप से सुन्दर हैं जिनमें क्रमशः किरणों की उपमा तृषित मनुष्य से, चित्रकार की तूलिका से, रात्रि के समय सोते हुए मनुष्य की उपमा सर्पदंष्ट्र मनुष्य से, यामिनी की उपमा कन्या से और शशि को उपमा अमृतकलश से दी गई है। अन्तिम पचासवें श्लोक में तो कवि की उपमा-शक्ति अपनी चरमसीमा पर पहुँच गई है, जहाँ अरुण की उपमा सूर्य के संसार-भ्रमणरूपी महान् नाटिका का प्रारम्भ करने वाले सूत्रधार से दी गई है। इस श्लोक में मयर का काव्य-सौन्दर्य एवं उनकी कल्पना-शक्ति स्पष्टरूप में प्रस्फुटित हो आयी है।

रूपक—

रूपक अलंकार प्रायः सभी अलंकारों से प्राचीन है तथा संस्कृत साहित्य के लगभग सभी प्रमुख काव्य-ग्रन्थों में पाया जाता है। 'सूर्यशतक' से हम रूपक के उदाहरण रूप में अनेक प्रसिद्ध रूपकों का उल्लेख कर सकते हैं। श्लोक ५८, ६७ तथा ७९, जहाँ क्रमशः 'ईक्षणकमलवनम्' अर्थात् नेत्रों की कमलवन-कान्ति, 'धूहस्तम्भे' अर्थातू 'स्तम्भ (के आकार) का धुरे का अग्रभाग,' तथा 'बहुलतम तमः पंक' अर्थात् 'घोर अंधकाररूपी पंक' रूपक प्रयुक्त हुए हैं, रूपक अलंकार के सुन्दर उदाहरण हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्प्रेक्षा—

उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग संस्कृत साहित्य में अधिक प्रचलित नहीं है किन्तु मयूर ने इस अलंकार का प्रयोग प्रचुरमात्रा में किया है। उत्प्रेक्षा अलंकार की परिभाषा है—एक विषय की दूसरे के रूप में कल्पना[1]। रुय्यक ने अपने अलंकारसर्वस्व में उत्प्रेक्षा की परिभाषा इस प्रकार की है—'अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा' जिसका सामान्यरूप से अर्थ यह होगा कि जहाँ विषयी चन्द्रादि के द्वारा विषय मुखादि का पूर्णतया निगरण कर लिया जाय तथा विषय और विषयी में अभेद की प्रतिपत्ति होने लगे वही उत्प्रेक्षालंकार का क्षेत्र है। साधारणतया इसमें 'इव' शब्द का प्रयोग भी रहता है। मयूर ने केवल सूर्यशतक में ही लगभग बीस स्थलों पर उत्प्रेक्षालंकार का आश्रय लिया है। उदाहरण के लिए सूर्यशतक के ही पाँचवें श्लोक की एक पंक्ति में हमें उत्प्रेक्षालंकार के दर्शन हो सकते हैं।

'पक्षच्छेदव्रणासृक्स्रुत इव दृषदो दर्शयन्प्रातरद्रेः'।

अर्थात् (सूर्य की रक्त किरणों के पड़ने से) मेरुपर्वत की शिलाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो पंखों के कटने से घावों से रक्त प्रवाहित हो रहा हो। इस पाद में 'मानो' अथवा 'इव' शब्द से ही उत्प्रेक्षालंकार की प्रतीति हो जाती है। और वैसे भी यहाँ विषय सूर्य की किरणों की कान्ति का निगरण हो गया है तथा विषयी पर्वत की शिलाओं से उनकी अभेद प्रतिपत्ति हो रही है।

तुल्ययोगिता—

'सूर्यशतक' में अन्य अलंकारों की अपेक्षा 'तुल्ययोगिता' अलंकार का प्रयोग कम हुआ है। इसका संभवतः एक मुख्य कारण यह भी है कि अन्य अलंकारों की अपेक्षा यह अलंकार उतना प्रचलित भी नहीं है। तुल्ययोगिता का लक्षण रुय्यक ने 'अलंकारसर्वस्व' में इस प्रकार दिया है "औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा समानधर्माभिसम्बन्धे तुल्ययोगिता" अर्थात् जहाँ पर औपम्य का कथन इवादि शब्दों के द्वारा न किया गया हो और वह गम्य हो, वहाँ पर प्राकरणिक तथा अप्राकरणिक अर्थों का समान गुण एवं क्रिया के साथ सम्बन्ध बताना तुल्ययोगिता अलंकार कहा जाता है। सूर्यशतक के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

९४ श्लोक की पंक्ति में यह अलंकार उपलब्ध होता है जहाँ पर्वत, आकाश, पृथ्वी तथा समुद्र का सूर्य से प्रकाशित होने का उल्लेख है।

'साद्रिद्यूर्वीनदीशा दिशति दश दिशो दर्शयन्प्राग्दशो यः' अर्थात् जो सूर्य पर्वतों, आकाश, पृथ्वी तथा समुद्रों के सहित दश दिशाओं को प्रकाशित करता है'। यहाँ इन सबका समानधर्म कथन है अतएव तुल्ययोगिता है।

दीपक—

दीपक अलंकार उस स्थल पर होता है जहाँ या तो एक ही संज्ञा अनेक क्रियाओं का उद्देश्य एवं विधेय हो अथवा एक ही क्रिया से अनेक संज्ञाएँ सम्बद्ध हों। मयूर ने अपने काव्यों में इस अलंकार का भी प्रयोग अल्पमात्रा में किया है। यह अलंकार सूर्यशतक के श्लोक ३७ तथा ८१ में उपलब्ध होता है। यथा—

> सिद्धैः सिद्धान्तमिश्रं श्रितविधि विबुधैश्चारणैश्चाटुगर्भं
> गीत्या गन्धर्वमुख्यैर्मुहुरहिपतिभिर्यातुधानैर्यतात्म।
> सार्घं साध्यैर्मुनीन्द्रैर्मुदिततममनो मोक्षिभिः पक्षपातात्
> प्रातः प्रारभ्यमाणस्तुतिरवतु रविर्विश्ववन्द्योदयो वः॥

यहाँ पर अनेक क्रियाओं का सम्बन्ध एक ही संज्ञा सूर्य से होने के कारण यह श्लोक दीपक अलंकार का उदाहरण है।

व्यतिरेक—

दो वस्तुओं का कथन करके जब उनमें भेद का प्रतिपादन किया जाय तो उसे व्यतिरेक अलंकार करते हैं। मयूर ने अपने सूर्यशतक में इस अलंकार को भी समुचित स्थान प्रदान किया है। सूर्यशतक के श्लोक २१ तथा २३ में स्पष्टरूप से व्यतिरेक अलंकार हैं किन्तु श्लोक ४३ में आक्षिप्त व्यतिरेक हैं। श्लोक २१ में सूर्य को सामान्य चक्षु से विलक्षण बतया गया है तथा श्लोक २३ में सूर्य की प्रभा को साधारण दीपक की वर्तिका से विलक्षण कहा गया है। अतएव इनमें व्यतिरेक अलंकार है। श्लोक ४३ में आक्षिप्ततया लक्ष्मी तथा सूर्य की कान्ति में भेद-प्रतिपादन है अतएव वहाँ भी व्यतिरेक अलंकार ही है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विरोध—

दो परस्पर विरोधी वस्तुओं का समानधर्म कथन ही विरोध है। मयूर ने अपने काव्य-ग्रन्थों में इस अलंकार का प्रयोग अधिक तो नहीं किया है किन्तु फिर भी उनके सूर्यशतक के श्लोक ८० में विरोधालंकार दृष्टिगोचर होता है। निम्न पंक्ति में विरोध स्पष्ट है :—

'चक्षुर्दक्षद्विषो यन्न तु दहति पुरः पूरयत्येव कामम्' अर्थात् (सूर्य का मण्डल) दक्षाद्विष (शिव) का वह नेत्र है जो काम (इच्छा) को भस्म नहीं करता है अपितु पूर्ण ही करता है।

सुभाषित-संग्रहों में संकलित मयूर-विरचित कुछ अन्य पद्य, जिनमें से सात श्लोक शिव तथा पार्वती के परस्पर वार्तालाप विषयक हैं, श्लेष-वक्रोक्ति अलंकार के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं। राजानक रुय्यक ने अपने 'अलंकारसर्वस्व' में इन श्लोकों को उद्धृत भी किया है।[1] किन्तु वहाँ पर उन्होंने इसके रचयिता आदि का उल्लेख नहीं किया है। सभी श्लोकों में श्लेष के साथ ही साथ वक्रोक्ति अलंकार भी है। वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण रुय्यक ने 'अन्योक्तस्य वाक्यस्य काकुश्लेषाभ्यामन्यथा योजनं वक्रोक्तिः' अर्थात् किसी अन्य प्रयोजन से कहे गए वाक्य का जब काकु तथा श्लेष के कारण अन्य अर्थ में ग्रहण किया जाय तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। मयूर की वास्तविक अलंकार-मर्मज्ञता तो इसी अलंकार से ज्ञात होती है क्योंकि मयूर 'वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य कुन्तक से लगभग तीन शताब्दी पूर्व के कवि थे। मयूर के श्लोक वक्रोक्ति अलंकार के सुन्दर उदाहरण हैं—

'चन्द्रग्रहणेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तयस्येवम्।
देव्यै यदि रुचितमिदं नन्दिन्नाहूयतां राहुः॥

(पार्वती शिव से)—'चन्द्रग्रहण के बिना (चाँद को ढँके बिना) मैं रमण नहीं करूँगी, आप मुझे क्यों इस तरह से प्रवृत्त करते हैं?' (शिव) 'नन्दिन्! यदि देवी को चन्द्रग्रहण ही प्रिय है तो राहु को बुला लाओ।' यहाँ चन्द्रग्रहण का प्रयोग द्व्यर्थक है तथा पार्वती के द्वारा कही गई बात को शिव अन्य अर्थ में ही ग्रहण करते हैं अतएव यहाँ वक्रोक्ति अलंकार है।

१. अलंकारसर्वस्व, पृ० २२२, काव्यमाला सीरीज़, निर्णयसागर प्रेस।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक अन्य उदाहरण देखिए—

आरोपयसि मुधा किं नाहमभिज्ञा किल त्वदङ्गस्य।
दिव्यं वर्षसहस्रं स्थित्वेति युक्तमभिधातुम्॥

(पार्वती)—आप मुझ पर व्यर्थ आरोप क्यों करते हैं? मैं आपके अङ्ग के विषय में कुछ भी नहीं जानती हूँ। (शिव) सहस्र दिव्य वर्षों तक मेरे अंक में बैठने पर भी तुम्हारा ऐसा करना उचित है क्या? यहाँ पर अंग शब्द का द्व्यर्थक प्रयोग है। पार्वती ने उसे अंग कहा था किन्तु भगवान् शिव के द्वारा वह अंक के अर्थ में गृहीत हुआ है।

इस प्रकार अनेक अलंकारों के उदाहरण उद्धृत करके हमने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मयूर एक आलंकारिक कवि हैं। इनका वर्ण-विन्यास सर्वथा उपयुक्त होता है। वे भाव-परिवर्तन के अनुकूल ही ध्वनि-परिवर्तन करने में भी निपुण हैं। उपरोक्त अलंकारों के अतिरिक्त उनके काव्यों में यमकादिक अनेक अन्य अलंकार भरे पड़े हैं किन्तु विस्तार-भय से यहाँ सभी अलंकारों का उल्लेख नहीं किया गया है। मयूर की कल्पनाएँ निश्चय ही उच्चकोटि की हैं तथा निस्सन्देह उन्हें काव्य-साहित्य तथा अलंकारशास्त्र का पर्याप्त ज्ञान था।

मयूर की कल्पनाशक्ति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। परवर्ती लगभग सभी उच्च-कोटि के साहित्यकारों ने जो गौरव उन्हें प्रदान किया है, इसका एकमात्र कारण उनकी उच्चकोटि की वैदग्ध्यपूर्ण कल्पना ही थी। उनकी कल्पना का सर्वोत्तम उदाहरण, सुभाषित संग्रहों में मयूर नाम से उद्धृत एक श्लोक में मिल सकता है जो एक ओर तो उनकी सुन्दर कल्पना का निर्णायक है तथा दूसरी ओर उनके बाह्य पर्यवेक्षण का भी प्रकाशक है। यथा—

आहत्याहत्य मूर्ध्ना द्रुतमनुपिबतः प्रस्तुतं मातुरूधः
किञ्चित्कुञ्चैकजानोरनवरतचलच्चारुपुच्छस्य धेनुः।
उत्तीर्णं तर्णकस्य प्रियतनयतया दत्तहुङ्कारमुद्रा
विस्रंसिक्षीरधारा लवशबलमुखस्याङ्गमार्द्रं लेढि॥

(अर्थात्) कोई गाय, सिर मार-मार कर शीघ्रता से माँ के टपकते हुए दुग्धवाले स्तन को पीते हुए, एक घुटनेको किञ्चित् झुकाए हुए, निरन्तर अपनी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चञ्चल एवं सुन्दर पूँछ को हिलाने वाले तथा निकलती हुई दुग्धधारा से चित्रित मुख वाले अपने बछड़े के अङ्गों को, हुंकार की मुद्रा के साथ प्यार के कारण जी भर कर चाटती है।" इस प्रकार की वास्तविक एवं सुन्दर कल्पनाएँ साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ ही हैं जो पशुओं के चित्रण में भी इतनी सजीव हैं कि वात्सल्य रस की अनुभूति हृदय में स्वतः उत्पन्न हो जाती है।

मयूर व्यंग्य अथवा प्रतीयमान अर्थ को काव्य की आत्मा मानने वाले ध्वनिवाद के उदय के पूर्व ही साहित्य को अलंकृत कर चुके थे। बाण की ही भाँति उनके ग्रन्थों में भी दीर्घसमासयुक्त रचना पायी जाती है। निश्चय ही मयूर को अपनी विद्वता पर पूरा विश्वास था और इसी कारण बाण का अनुकरण कर उन्होंने बड़े-बड़े समासों से युक्त भाषा को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया।

आज के विद्वान उनके काव्य को मध्यम कोटि का अथवा अवर कोटि का भी कह सकते हैं किन्तु उनका उपरोक्त कथन न्यायसंगत नहीं होगा क्योंकि समय का भी ध्यान रखना आवश्यक है। मयूर उस समय के कवि हैं जब अलंकार ही काव्य का प्राण था। अतएव यदि हम उस समय के दृष्टिकोण से विचार करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अपने युग के अनुसार उनका काव्य उत्तमकोटि का है।

६

सूर्योपासना की परम्परा

सूर्य का वर्णन वैदिककाल से ही देवता के रूप में मिलता है किन्तु वैदिक-काल में सूर्य का स्थान गौण समझा जा सकता है क्योंकि वैदिककाल में इन्द्र तथा अग्नि इनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देवता माने गये हैं। पौराणिक गाथाओं के आधार पर सूर्य को देवमाता अदिति तथा महर्षि कश्यप का पुत्र माना जाता है। अदिति-पुत्र होने के कारण ही इन्हें आदित्य की संज्ञा प्रदान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की गयी है। वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद (२ मण्डल, २७ सूक्त, १ मंत्र) में छः आदित्य माने गये हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश। किन्तु ऋग्वेद में ही आगे (नवम मण्डल, ११४ सूक्त, ३ मंत्र) आदित्य की संख्या सात बतलायी गयी है। पुनः आगे चल कर हमें अदिति[1] के आठ पुत्रों का नाम मिलता है। वे निम्न हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, अंश, विवस्वान् तथा आदित्य। इनमें से सात को लेकर अदिति चली गयी और आठवें सूर्य (आदित्य) को आकाश में छोड़ दिया। वेदों के पश्चात् शतपथ ब्राह्मण में द्वादश आदित्यों का उल्लेख मिलता है। महाभारत (आदि पर्व, १२१ अध्याय) में इन आदित्यों का नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु बताया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलने से यह निश्चित करना कठिन है कि वास्तव में कौन से अदिति-पुत्र सूर्य हैं। आदित्य तथा सूर्य कहीं-कहीं अभिन्न माने जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है कि वस्तुतः यह द्वादश आदित्य एक ही सूर्य के कर्म, काल और परिस्थिति के अनुसार रखे गये भिन्न-भिन्न नाम हैं। कुछ विद्वान तो यह भी कहते हैं कि यह द्वादश आदित्य सूर्य के द्वादश मासों में उदित होने के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यही कारण है कि पूषन्, सवित्र, मित्र, वरुण तथा सूर्य को लोग अभिन्न मानते हैं। किन्तु इतना तो निश्चित है कि इन देवताओं में कुछ न कुछ स्वरूपभेद अवश्य रहा होगा जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामों से निर्दिष्ट किया गया है। यह भेद समय के साथ अब लुप्त हो गया है और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण अब हमें कोई भेद नहीं दृष्टिगोचर होता है।

सूर्य के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि वह आकाश के पुत्र हैं। यह तथ्य ऋग्वेद से भी प्रमाणित होता है जहाँ आकाश-पुत्र सूर्य के लिए गीत गाने का वर्णन मिलता है[2]। कहीं-कहीं उषा को सूर्य की माता बतलाया गया है जो चमकते हुए बालक को अपने साथ लाती है तथा उसका मातृत्व सूर्य से प्रथम

---

१. हिंदी ऋग्वेद—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड, प्रयाग, पृ० १३३६, मंत्र ८–९।

२. ऋग्वेद १०. ३७. १ 'दिवः पुत्राय सूर्याय संसत'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उदय होने के कारण माना गया है। ऋग्वेद में ही सूर्य तथा उषा दोनों को इन्द्र से उत्पन्न बताया गया है[1]। उषा को ऋग्वेद में ही एक स्थान पर सूर्य की पत्नी[2] तथा एक अन्य स्थान पर सूर्य-पुत्री माना गया है[3]। इस प्रकार वेदों के आधार पर यह निश्चित करना कठिन है कि सूर्य किसके पुत्र थे क्योंकि स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न वर्णन मिलता है।

सूर्य के जन्म के विषय में इन सबसे विचित्र कथानक विष्णुपुराण में मिलता है जहाँ सूर्य को विश्वकर्मा की शक्ति के आठवें अंश से उत्पन्न कहा गया है। विष्णुपुराण की कथा निम्न प्रकार है। "विश्वकर्मा की पुत्री सञ्ज्ञना के साथ सूर्य का विवाह हुआ तथा तीन पुत्रों को जन्म देने के पश्चात् उसने अपने पति की शक्ति को असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छाया से अपना स्थान ग्रहण करने को कहकर एक वन को चली गयी। छाया ने अपनी भिन्नता सूर्य से नहीं बतायी तथा सूर्य ने कुछ वर्षों तक इस पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन सञ्ज्ञना के एक पुत्र यम ने छाया के साथ कुछ दुर्व्यवहार कर दिया और छाया ने उसे शाप दे दिया। सूर्य, जिन्हें यह ज्ञात था कि माता का शाप पुत्र पर कोई प्रभाव नहीं डालता, ने इस विषय में खोज की और उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन थी। सूर्य के क्रुद्ध तेज से छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे सञ्ज्ञना की खोज में गये जो उन्हें घोड़ी के रूप में वन में भ्रमण करती हुई दिखाई दी। सूर्य ने इस बार अपने को अश्व में परिवर्तित कर दिया और वहीं पर उन दोनों ने कुछ समय तक जीवन व्यतीत किया। कुछ समय के अनन्तर वह अपने पशुजीवन से ऊब गये तथा अपने वास्तविक रूप में घर लौट आये। विश्वकर्मा ने इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति से बचने के लिए सूर्य को एक पाषाण पर स्थित कर दिया तथा उनसे अपने तेज के आठवें अंश का अपहरण कर लिया जिससे उन्होंने विष्णु के चक्र, शिव के त्रिशूल तथा कार्तिकेय की शक्ति का निर्माण किया।[4]

१. ऋग्वेद २. १२. ७ 'यः सूर्य यः उषसं जगाम'।
२. ऋग्वेद (७. ७५. ५)
३. ऋग्वेद (४. ४३. २) 'सूर्यस्य दुहिता'।
४. Thomas—Epics, myths and legends of India, P. 116–118.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार सूर्य के जन्म के विषय में भिन्न-भिन्न कथाएँ होने के कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वह वास्तव में किस देवता के पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदिति के ही पुत्र हों क्योंकि अदिति को प्रायः सभी देवताओं की माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूषन् ये चारों ही नाम वस्तुतः सूर्य के ही द्योतक हैं किन्तु पूषन् का स्वरूप कहीं-कहीं सूर्य से भिन्न-सा प्रतीत होता है। मित्र, सविता तथा सूर्य शब्द सूर्य के लिए ही वेदों में प्रयुक्त हुए हैं। मित्र सूर्य के संचार का नियामक है तथा वह सविता से अभिन्न माना जाता है। वैदिक 'मित्र' पारसी धर्म के 'मिथ्र' से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्र का अर्थ सुहृद अथवा सहायक है और निश्चय ही वह सूर्य की रक्षण-शक्ति का द्योतक है। सविता 'हिरण्यमयदेव' है जिसके हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्यमय हैं। सविता विश्व को अपने हिरण्यमय नेत्रों से देखता हुआ गमन करता है[1]। सविता का अर्थ है 'प्रसव करने वाला', 'स्फूर्ति प्रदान करने वाला' देवता। निश्चय ही वह विश्व में गति का संचार करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले सूर्य का प्रतिनिधि है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ३५ वें सूक्त के ग्यारह मंत्र सूर्य की स्तुति में ही कहे गए हैं। वहाँ सूर्य के अन्तरिक्ष भ्रमण, प्रातः से सायं तक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्य के कारण चन्द्रमा की स्थिति आदि का वर्णन मिलता है। प्रथम मण्डल के ५० वें सूक्त के आठवें मंत्र में लिखा है—"सूर्य हरित नामक सात अश्व से तुम्हें ले जाते हैं। किरणें व ज्योति ही तुम्हारे केश हैं। ऋग्वेद में आगे कहा गया है 'सूर्य के एक चक्र रथ में सात अश्व जोते गए हैं। एक ही अश्व सात नामों से रथवहन करता है।[2] वह सभी प्राणियों का, उनके शोभन तथा अशोभन कार्यों का द्रष्टा है तथा मनुष्यों के कर्मों का प्रेरक देव है। सूर्य आकाश में चमकता हुआ अंधकार को दूर भगाता है। अपने गौरव तथा महत्त्व

---

१. आकृष्णेन रजसा वर्तमानो···च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

२. हिन्दी ऋग्वेद (इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स, लिमिटेड प्रयाग, पृ० ३४५, मन्त्र, २)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के कारण इसे देवों का पुरोहित कहा गया है। सूर्य को मित्र तथा वरुण का नेत्र बताया जाता है।[१]

सूर्य के विविध रूपों का स्पष्ट वर्णन वेदों में उपलब्ध होता है। ऋषि अन्धकार को दूर भगाने वाले सूर्य के तीन रूपों का वर्णन करते हैं—उत्, उत् + तर = उत्तर, उत् + तम् = उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्य में बढ़कर हैं। सूर्य की उस ज्योति का नाम उत् है जो इस भुवन के भौतिक अन्धकार के अपहरण में समर्थ होती है। देवों के मध्य में जो देव-रूप से निवास करती है वह 'उत्तर' है, परन्तु इन दोनों से बढ़कर एक विशिष्ट ज्योति है जिसे उत्तम कहते हैं[२]। यह तीनों शब्द सूर्य के कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्यकारण से अतीत अवस्था के द्योतक हैं। इस एक ही मंत्र में सूर्य के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपों का संकेत किया गया है।

वेदों में सूर्य का महत्त्व अन्य देवताओं की अपेक्षा गौण नहीं है। उनके महत्त्व को अनेक तथ्य सूचित करते हैं। चार धार्मिक सम्प्रदायों में से सूर्य की आराधना करने वाला सौर सम्प्रदाय भी एक है। एक विशेष प्रकार का धार्मिक सम्प्रदाय सूर्य की आराधना करता है। इसीसे स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओं की अपेक्षा सूर्य का अधिक महत्त्व है।

वेद का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मंत्र गायत्री है जिसे वेदों की माता भी कहा जाता है। यह मंत्र सविता अथवा सूर्य के महत्त्व का ही वर्णन करता है। पौराणिक एकाक्षर ॐ भी सूर्य से ही सम्बद्ध है। यह सूर्यसम्बन्धी अग्नि तथा त्रिदेवों का प्रतीक है। यह एक चक्र के अन्दर लिखा जाता है जो सूर्य-मण्डल का द्योतक है। छान्दोग्य उपनिषद् में ॐ का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—'सभी प्राणियों का सार पृथ्वी है, पृथ्वी का सार जल है, जल का सार वनस्पति है, वनस्पतियों का सार मनुष्य है, मनुष्य का सार वाणी है, वाणी का सार

---

१. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः, साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव, यः समविव्यक् तमांसि ॥
(ऋग्वेद ७. ६३. १)

२. उद्वयं तमस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ (ऋग्वेद १. २०. १०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद है, ऋग्वेद का सार सामवेद है, सामवेद का सार उद्गीथ है और उसी को ॐ कहते हैं।

'स्वस्तिक' हिन्दू उत्पत्ति का एक सौर चिह्न है। इस शब्द का अर्थ है "भलीभाँति रहना'। यह तेज अथवा महिमा का द्योतक है तथा इस बात का संकेत करता है कि जीवन का मार्ग कुटिल है तथा यह मनुष्य को व्याकुल कर सकता है किन्तु प्रकाश का मार्ग उसके साथ ही साथ चलता है।

ग्रीक पौराणिक गाथाओं में सूर्य

ग्रीक पौराणिक गाथाओं में सूर्य का वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदों में। वास्तव में यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि ग्रीक धर्म वैदिक धर्म का अनुकरण मात्र है। ग्रीक पौराणिक गाथाओं के अनुसार Gala देवी पृथ्वी की देवी हैं। इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्र का निर्माण स्वयं किया। Uranus इनके पति तथा पुत्र दोनों ही हैं। इन दोनों के संयोग से Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं तथा देवताओं के सम्राट् माने गए हैं। Cronus की पत्नी का नाम Rttea है तथा इन दोनों के संयोग से Zeus उत्पन्न हुए। ग्रीस की पौराणिक गाथाओं में सूर्य को इन्हीं Zeus का पुत्र माना गया है। सूर्य को ग्रीक पौराणिक गाथाओं में Phoebs Apollo (फोएब्स अपोलो) तथा Helios नामों से सम्बन्धित किया गया है। पौराणिक गाथाओं में सूर्य के प्रासादादि का भी वर्णन मिलता है। एक पौराणिक गाथा के अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासाद में पहुँचा जो कान्तियुक्त स्तंभों पर आश्रित था[1] तथा स्वर्ण एवं

---

१. "Borne by illuminous pillars, the palace of the Sun God rose lustrous with gold and flamered rubies. The Cornice was of dazzling ivory, and carved in relief on the wide silver doors were legends and miracle tales."

—Gods and Heroes—Gustav sehwab—Translated in English—Olgamarx and Ernst Morwitz, (Page.49.)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लाल मणियों से दीप्तिमान हो रहा था। इसकी कारनिस चमकीले हाथीदाँतों से बनी थी और चौड़े चाँदी के द्वारों पर उपाख्यान एवं अद्भुत कथाएँ लिखी थीं।

Phoebus लोहित वर्ण का जामा पहने हुए अनुपम मरकतमणियों से शोभायमान सिंहासन पर आरूढ़ थे। उनके भृत्य दायीं तथा बायीं ओर क्रम से खड़े थे। इनमें दिवस, मास, वर्ष, शताब्दियाँ तथा ऋतुएँ भी थीं। वसन्त ऋतु अपने पुष्पों के गुलदस्तों सहित, ग्रीष्म ऋतु अपने पीत वर्ण के अन्नों सहित तथा शरद् ऋतु, जिसके केश ओलों की भाँति श्वेत थे, उनके चारों ओर नम्रभाव से स्थित थे। सूर्य-मस्तक के चारों ओर जाज्वल्यमान किरणें बिखर रही थीं।

सूर्य के प्रासाद में पहुँचने के पश्चात् Phaethon ने उनसे कहा कि वह अपना रथ एक दिवस के लिए उसको दे दें। उस स्थान पर, जब सूर्य उसको रथ न माँगने के लिए समझाते हैं, तब वह स्वयं रथ का वर्णन अपने मुख से करते हैं जो निम्न —है

'केवल मैं ही रथ के प्रज्वलित धुरे पर, जिससे चिनगारियाँ बिखरती रहती हैं एवं जो वायु के मध्य घूमता है, खड़ा रह सकता हूँ। रथ को एक निर्दिष्ट मार्ग से जाना चाहिए। यह अश्वों के लिए एक कठिन कार्य होता है जब कि प्रातःकाल वे स्वस्थ भी रहते हैं। मध्याह्न में रथ को आकाश के मध्य भाग में होना चाहिए। कभी-कभी मैं स्वयं भी घबड़ा जाता हूँ जब मैं नीची भूमि और समुद्र को देखता हूँ।[१] लौटते समय भी अभ्यस्त हाथ ही रश्मियों को सँभाल सकते हैं। Thetis (समुद्रों की देवी), जो मुझे अपने शीतल जल में ले लेने की प्रतीक्षा करती रहती है, भी पूर्णरूप से सावधान रहती है जब तक मैं आकाश से फेंक नहीं दिया जाता।' "यह भी एक समस्या है कि स्वर्ग निरन्तर चलता रहता है तथा रथ की गति चक्र के समान तीव्र गति के विपरीत होती है।"[२]

१. "I myself am often shaken with dread when, at a such height, I stand upright in my chariot. My head spins when I look down to the land and sea so far beneath me."—Gods and Heroes, (p. 49, Eng. Trans.).

२. "Heaven turns incessantly and that the

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार रथ का जो वर्णन हमें यहाँ मिलता है लगभग वैसा ही वर्णन भारतीय पौराणिक गाथाओं में भी मिलता है। सूर्य के रथ में वहाँ तो अग्नि का निवास ही माना गया है, फिर यदि उसके धुरे से अग्नि निकलती है तो कोई विशेष बात तो है नहीं। वेद में सूर्य के आकाश से फेंके जाने का वर्णन अवश्य नहीं मिलता है, तथा यह ग्रीक धर्म की अपनी कल्पना है।

इसके पश्चात् Apollo अपने पुत्र से कहते हैं कि यदि मैं तुम्हें अपना रथ दे भी दूँ तो तुम इन बाधाओं का निराकरण नहीं कर सकते किन्तु Phaethon के विशेष आग्रह पर सूर्य उसको रथ दिखलाने के लिए ले जाते हैं। वहाँ पुनः रथ का वर्णन आया है और वह तो भारतीय धर्म का अनुकृतिमात्र प्रतीत होता है। वर्णन इस प्रकार है—'रथ-धुरा तथा चक्र-हाल स्वर्ण निर्मित थे। उसकी तीलियाँ चाँदी की थीं तथा जुआ चन्द्रकान्तमणि तथा अन्य बहुमूल्य मणियों से चमक रहा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पौराणिक गाथाओं तथा ग्रीक पौराणिक गाथाओं में पर्याप्त साम्य है और सूर्य का जो महत्त्व भारतीय धर्म में है वही महत्त्व ग्रीक धर्म में भी प्रतिपादित किया गया है। सूर्य का स्थान लगभग सभी पौराणिक गाथाओं में महत्त्वपूर्ण है तथा यही एक ऐसा देवता है जिसकी आराधना प्रायः सभी धर्मों में समान रूप से होती है।

ऐतिहासिक युग में सूर्योपासना

वैदिककाल में अन्य देवताओं की अपेक्षा सूर्य का स्थान गौण था किन्तु आगे चलकर सूर्य का महत्त्व अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक हो गया। महाभारत के समय से ही समाज में सूर्य-पूजा का प्रचलन हो गया था। कुषाण काल में तो सूर्य-पूजा का प्रचलन ही नहीं था वरन् कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे। कनिष्क (७८ ई०) के पूर्वज शिव तथा सूर्य के उपासक थे[1]। इसके पश्चात् हमें तीसरी शताब्दी ई० के गुप्त सम्राटों के समय में भी

---

driving is against the sweep of its vast rotations."
(Gods and Heroes, p. 49, Eng. Trans.)

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय—प्राचीन भारत का इतिहास (१९५७ संस्करण) पृ० २१७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूर्य, विष्णु तथा शिव की उपासना का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त (४१४-५५ ई०) के समय में ब्राह्मण धर्म का विशेष अभ्युत्थान हुआ तथा उसके समय में विष्णु, शिव तथा सूर्य की उपासना विशेषरूप से होती थी, यद्यपि स्वयं कुमारगुप्त कार्तिकेय का उपासक था[1]। स्कन्दगुप्त (४५५-६७ ई०) के समय में तो बुलन्दशहर जिले के इन्द्रपुर नामक स्थान पर दो क्षत्रियों ने एक सूर्य-मन्दिर भी बनवाया था।[2] गुप्त सम्राटों के काल तक सूर्य-आराधना का विशेष प्रचलन हो गया था और उनके समय में मालवा के मन्दसौर स्थान में, ग्वालियर में, इन्दौर में तथा बघेलखण्ड के आश्रमक नामक स्थान में निर्मित चार सूर्य-मन्दिरों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनके समय की बनी हुई सूर्यदेव की कुछ मूर्तियाँ भी बंगाल में मिलती हैं[3] जिनसे यह प्रतीत होता है कि गुप्त सम्राटों के समय में सूर्य भगवान् की आराधना अधिक प्रचलित थी।

सातवीं ईस्वी में हर्ष के समय में सूर्योपासना अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। हर्ष के पिता तथा उनके कुछ और पूर्वज न केवल सूर्योपासक थे अपितु 'आदित्य-भक्त' थे। हर्ष के पिता के विषय में तो बाण ने अपने 'हर्षचरित' में लिखा है कि वह स्वभाव से ही सूर्य के भक्त थे तथा प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्नान करके 'आदित्यहृदय' मंत्र का बारंबार जाप करते थे[4]। हर्षचरित के अतिरिक्त अन्य कई प्रमाणों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सौर-सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक उत्कर्ष पर था। हर्ष के समय में प्रयाग में तीन दिन का अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन में पहिले दिन बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिव की पूजा की गई थी[5]। इससे भी ज्ञात होता है कि सूर्य-पूजा का उस काल में पर्याप्त महत्त्व था।

---

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय—प्राचीन भारत का इतिहास (१९५७ संस्करण) पृ० २५८
२. श्री नेत्र पांडेय—भारत का वृहत् इतिहास (१९५० सं०) पृ० २६८
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, २८०
४. हर्षचरित—चौखंबा प्रकाशन, पृ० २०२
५. प्राचीन भारत का इतिहास—डा० भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ३०६, १९५७ सं०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हर्ष के समय तक ही सूर्योपासना का वह चरमोत्कर्ष सीमित नहीं रहा अपितु लगभग ग्याहरवीं शती तक सूर्य-पूजा का प्रचलन रहा। हर्ष के पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड़ (७२४-७६० ई०) नामक एक अन्य राजा भी सूर्य का भक्त था। उसने सूर्य के 'मार्तण्ड मन्दिर' का निर्माण करवाया जिसके खंडहरों से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर अपने समय में विशाल रहा होगा।[1] प्रतिहार सम्राटों के समय में भी सूर्य-पूजा का विशेष प्रचलन था। ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग निर्मित कोणार्क का विशाल सूर्य-मन्दिर भी जनता की सूर्य-भक्ति का ही प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-काल से लेकर लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक सूर्य ने अन्य देवताओं की अपेक्षा विशेष सम्मान प्राप्त किया।

कुष्ठ-रोग-निवारण में सूर्य का महत्त्व

जनश्रुति के अनुसार मयूर को कुष्ठरोग हो गया था तथा इस भयंकर रोग से त्राण पाने के लिए उन्होंने भगवान् सूर्य की उपासना की तथा भगवान् सूर्य को प्रसन्न कर पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया। इस जनश्रुति में सत्यांश कितना है, यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि भारतीय परम्परा में प्रारम्भ से ही सूर्य को इस रोग से मुक्त करने वाला देवता माना गया है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में इसका उल्लेख मिलता है। वहाँ सूर्य को सभी चर्मरोगों तथा अनेक अन्य भीषण रोगों का विनाशक बताया गया है—"सूर्य, उदित होकर और उन्नत आकाश में चढ़कर हमारा मानस रोग (हृदयस्थ), पीत वर्ण रोग तथा शरीर-रोग विनष्ट करो। मैं अपने हरिमाण तथा शरीर-रोग को शुक एवं सारिका पक्षियों पर न्यस्त करता हूँ। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग के विनाश के लिए समस्त तेज के साथ उदित हुए हैं[2]। इन मंत्रों से ज्ञात होता है कि सूर्योपासना से न केवल शारीरिक अपितु मानसिक रोग भी विनष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि, व्याधि के शमन के लिए इन मंत्रों को जपता है। सायण के विचार से इन्हीं मन्त्रों का जप करने से प्रस्कण्व ऋषि का चर्मरोग विनष्ट हो गया था।

१. प्राचीन भारत का इतिहास (पृ० ३०६)—डा० भगवतशरण उपाध्याय।

२. ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, ५० सूक्त, मंत्र ११-१३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूर्योपासना से कुष्ठरोग का निवारण हो जाता है यह धारणा न केवल भारतीयों में ही प्रचलित थी अपितु प्राचीनकाल से ही पारसियों में भी प्रसिद्ध थी। हेरोडोरस के अनुसार कुष्ठरोग का कारण सूर्य भगवान् के प्रति पाप करना था। उसके इतिहास की प्रथम पुस्तक में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है— "कोई भी नागरिक जो कुष्ठरोग या श्वेतकुष्ठ से ग्रस्त होता था, नगर में प्रविष्ट नहीं होता था, न वह अन्य पारसियों से मिलता-जुलता था तथा अन्य लोग यह कहते थे कि इसके इस रोग का कारण सूर्य के प्रति किया गया कोई पाप है।[1] इससे यह भी ज्ञात होता है कि पारसियों का यह विश्वास था कि जो देवता इस प्रकार के संक्रामक रोगों की उत्पत्ति का कारण है केवल वही उस रोग का विनाशक हो सकता है।

आज भी भारतवर्ष में कई स्थानों पर इस प्रकार की धारणा प्रचलित है कि सभी प्रकार के चर्म रोगों का विनाश आदित्योपासना से हो जाता है। 'अयोध्या' के निकट सूर्यकुण्ड नामक एक जलाशय है। जनश्रुति है कि उस कुण्ड में स्नान करने से सभी प्रकार के चर्मरोगों का विनाश हो जाता है। मिथिला में भी ऐसी धारणा है कि कार्तिक शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन सूर्योपासना करने से मनुष्य को किसी प्रकार का चर्मरोग नहीं हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी पौराणिक कथाओं को अन्धविश्वास कहने वाले वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि सूर्य-किरणें सभी प्रकार के चर्म-रोगों के विनाश के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। आजकल तो अनेक चिकित्सा-लयों में सूर्य की किरणों से ही कुष्ठरोग-ग्रस्त लोगों का उपचार किया जाता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि सूर्य ही एक ऐसे देवता हैं जिनकी उपासना समस्त जाति करती है। सूर्योपासना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा अत्यन्त नवीन भी कही जा सकती है।

---

१. "Whatsoever one of the citizens has leprosy or the white (leprosy) does not come into city, nor does he mingle with the other Persians. And they say that he contracts these (diseases) because of having committed some sin against the Sun." Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayūra, p. 35.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहायक पुस्तकों की सूची

(A)

(१) अभिज्ञानशाकुन्तल : कालिदास

(२) अलंकारसर्वस्व : राजानक रुय्यक

(३) ऋग्वेद : प्रयाग प्रकाशन

(४) कवीन्द्रवचनसमुच्चय : एफ़ डब्लू थामस

(५) कविकण्ठाभरण : क्षेमेन्द्र

(६) काव्यादर्श : दण्डी

(७) हिन्दीकाव्यप्रकाश : चौखम्बा प्रकाशन

(८) ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन

(९) प्रसन्नराघव : जयदेव

(१०) भोजप्रबन्ध : बल्लाल

(११) मनुस्मृति : मनु

(१२) महाभारत : भण्डारकर प्रकाशन

(१३) रघुवंश : कालिदास

(१४) राजतरंगिणी : कल्हण

(१५) रामायण : वाल्मीकि

(१६) साहित्यदर्पण : विश्वनाथ

(१७) सुभाषितरत्नभाण्डागार : बंबई प्रकाशन

(१८) सूर्यशतक : मयूर

(१९) हर्षचरित : चौखम्बा प्रकाशन

(२०) प्राचीन भारत का इतिहास : डा० भगवतशरण उपाध्याय

(२१) भारत का वृहत् इतिहास : श्री नेत्र पांडेय

(२२) संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ अनु० मंगलदेव शास्त्री

(२३) संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(२४) Catalogus Catalogarum : Aufrecht.

(२५) Classical Sanskrit Literature : Keith, London II Ed.

(२६) Epics, Myths and Legends of India : P. Thomas, XI Ed.

(२७) Epigraphia Indica : Vol. 7.

(२८) Gods and Heroes : Gustav Sehwab, Translated in English by Ernst Morwitz and Olga Marx.

(२९) Hindu Mythology : W. J. Wilkins, II Ed., Calcutta and Simla, 1900.

(३०) History of Classical Sanskrit Literature : T. T. Krishnamachariar, 1937.

(३१) Indian Antiquary : Buhler, Vol I, XXXVI.

(३२) India What Can it Teach Us ? (Renaissance of Sanskrit Literature), F. Maxmuller.

(३३) Journal of the Asiatic Society of Bengal.

(३४) Kadambari (Kathamukhabhaga) : M. M. Pt. R. S. Sastri and D. P. Malviya, Allahabad, 1931.

(३५) Notes of Alamkara Literature : J. A. Jacob, J.R.A.S. (New Series) Vol. 29.

(३६) Notices of Sanskrit Manuscripts : M. M. Pt. Hara Prasad Sastri, II Series, Vol I.

(३७) Prabandhachintamani C. H. Tawney, Calcutta 1901.

(३८) Sanskrit English Dictionary : Monier Williams, Oxford. 1951.

(३९) Sanskrit Poems of Mayura : G, P. Quackenbos, Newyork, 1917.

(४०) Vishnu Puran : Wilson. London. 1886.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ श्रीः ॥

सूर्यशतकम्

सटिप्पण-हिन्दीव्याख्योपेतम्

जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दूररेणुं
रक्ताः सिक्ता इवौघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्रवस्य ।
आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेवारुणा वो विभूत्यै
भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भानवीयाः ॥ १ ॥

भगवान् भास्कर की वे नवीन रश्मियाँ आप लोगों को समृद्धि प्रदान करें जो[1] जम्भ-शत्रु[2] (इन्द्र) के हाथी[3] (ऐरावत) के गंडस्थल से प्रवाहित प्रचुर सिंदूर-रज को मानो धारण करने वाली हैं, उदयाचल[4] पर्वत की उपत्यका से बहने वाली गेरुक आदि धातु के धारा-समूह से मानो सिञ्चित होने से रक्ताभ हैं, एवं (सूर्योदय) के साथ ही आने वाली कमल-वन की कान्ति से ही अरुण वर्ण हैं ॥ १ ॥

---

१. यह श्लोक शार्ङ्गधरकृत शार्ङ्गधरपद्धति, गदाधरकृत रसिकजीवन एवं सुभाषित रत्नभांडागार में उद्धृत किया गया है ।

२. जम्भ शत्रु भगवान् इन्द्र हैं । इसकी पुष्टि महाभारत से भी होती है जहाँ इन्द्र उस राक्षस के वध की प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं ।

३. ऐरावत अथवा ऐरावण इन्द्र का हाथी है । यह समुद्र-मन्थन से निकले हुए सोलह रत्नों में से एक है । इसका वर्णन महाभारत में आया है । ऐरावत पर विराजमान इन्द्र के चित्र के लिए देखिए—Epics, myths and legends in India—Thomas, plate 104, P. 49.

४ उदयगिरि मेरुपर्वत को कहते हैं । इसके पीछे से सूर्योदय होता है, ऐसी प्रसिद्धि है । यह चौरासी हजार योजन ऊँचा पौराणिक पर्वत है जो स्वर्ण-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भक्तिप्रह्वाय दातुं मुकुलपुटकुटीकोटरक्रोडलीनां
लक्ष्मीमाक्रष्टुकामा इव कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये ॥
कालाकारान्धकाराननपतितजगत्साध्वसध्वंसकल्याः
कल्याणं वः क्रियासुः किसलयरुचयस्ते करा भास्करस्य ॥ २ ॥

भक्ति[1] से नम्र जनों को प्रदान करने के लिए मानो कुमल रूपी कुटी के अन्दर संश्लिष्ट लक्ष्मी[2] को अपनी ओर कर्षित करने की इच्छा से ही कमल समूहों का उद्घाटन करने वाली, काल तुल्य आकार वाले तम के मुख में पतित भुवन-भय को नष्ट करने में समर्थ एवं नव-पल्लव के समान कान्ति वाली, भगवान् सूर्य की, किरणें[3] आपका कल्याण करें ॥ २ ॥

निर्मित है। यह सभी द्वीपों का केन्द्र-बिन्दु भी है। इसी पर्वत के शिखर पर देवताओं के शिल्पकार विश्वकर्मा ने एक सुन्दर प्रासाद का निर्माण किया जिसमें देवता तथा दानव दोनों रहते हैं। इसी पर आठ दिशाओं के केन्द्र-बिन्दु हैं जो इनके रक्षक इन्द्र तथा अन्य सात लोकपालों के निवास-स्थान हैं। इसमें अद्भुत झीलें, नदियाँ तथा स्वर्णिम पंखों वाले पक्षियों से युक्त वन हैं। गंगा नदी इसी के शिखर से प्रवाहित होती है। यह समस्त प्रकार की मणियों तथा रत्नों का स्रोत है। जीवधारी मेरु मेना के पिता तथा देवी पार्वती के नाना हैं। इसका वर्णन महाभारत में आया है। रामायण तथा विष्णुपुराण में भी इसका वर्णन मिलता है। 'सूर्यशतक' के सत्ताइस श्लोकों में यह पर्वत वर्णित है।

१. यह श्लोक शार्ङ्गधर पद्धति (४.५२) तथा सुभाषित रत्नभांडागार (पृ. ४१, श्लोक २) में उद्धृत किया गया है।

२. कमल की विकसित पंखुड़ियों पर आसीन लक्ष्मी समुद्रमन्थन के फल-स्वरूप समुद्र से निकली थीं। यह धन की देवी हैं। इनकी उत्पत्ति का वर्णन विष्णु पुराण तथा महाभारत में मिलता है। कवि को सम्भवतः 'लक्ष्मी' से यहाँ 'धन' का अर्थ अभिप्रेत है।

३ कवि ने सूर्य-रश्मियों को 'भास्करस्य कराः' कहकर तथा 'कर' शब्द का द्व्यर्थक प्रयोग 'किरण' तथा 'हाथ' करके अत्यन्त औचित्य का निर्वाह किया है क्योंकि कर अर्थात् हाथ ही कमलवन में संश्लिष्ट लक्ष्मी को भक्तों को प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गर्भेष्वम्भोरुहाणां शिखरिषु च शिताग्रेषु तुल्यं पतन्तः
प्रारम्भे वासरस्य व्युपरतिसमये चैकरूपास्तथैव ।।
निष्पर्यायं प्रवृत्तास्त्रिभुवनभवनप्राङ्गणे पान्तु युष्मा-
नूष्माणं संतताध्वश्रमजमिव भृशं बिभ्रतो ब्रध्नपादाः ।। ३ ।।

निरन्तर अत्यधिक गमन करने के श्रम से ही मानो उष्णता को धारण करने वाली,[1] कमल पुष्पों के अंतःप्रदेश तथा गिरि के अग्रिम भागों का समान रूप से स्पर्श करने वाली एवं त्रिलोक-प्रासाद-प्रांगण में एक साथ पहुँचने वाली, भानु की किरणें आपकी रक्षा करें ।। ३ ।।

प्रभ्रश्यत्युत्तरीयत्विषि तमसि समुद्वीक्ष्य वीतावृतीन्प्राग्-
जन्तूंस्तन्तून्यथा यानतनु वितनुते तिग्मरोचिर्मरीचीन् ।।
ते सान्द्रीभूय सद्यः क्रमविशददशाशादशालीविशालं
शश्वत्संपादयन्तोऽम्बरममलमलं मङ्गलं वो दिशन्तु ।। ४ ।।

जिस प्रकार कोई तन्तुवाय प्राणियों को निरावृत देखकर विस्तीर्ण सूत्रों का वितान करता है, उसी प्रकार अन्धकार के नष्ट हो जाने पर प्राणियों को आवरण-रहित देखकर उत्तरीय की कान्ति के समान मरीचिमाली अपनी रश्मियों का विस्तार करते हैं। जैसे तन्तु परस्पर संयुक्त होकर विमल वस्त्र का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार दश[2]

---

१. कवि ने पूर्व श्लोक की भाँति यहाँ भी सूर्य-रश्मियों को 'ब्रध्नपादाः' कहकर तथा पाद का द्व्यर्थक प्रयोग 'किरणें' और 'पैर' करके अपने कथन की सार्थकता सिद्ध कर दी है तथा लौकिक पादों से सूर्य के पादों की विलक्षणता भी बतायी है। लोक में कोई भी प्राणी कमलवन तथा पर्वत के शिखरों पर एक साथ नहीं चल सकता किन्तु सूर्य के पाद ऐसा करने में समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त पैरों से चलने में क्रम रहता है, एक पैर आगे तथा दूसरा पीछे पड़ता है किन्तु सूर्य के पाद निष्पर्याय पड़ते हैं। वह त्रिभुवन-भुवन-प्रांगण में बिना किसी क्रम के एक साथ ही पड़ते हैं।

२ 'सूर्यशतक' के श्लोक अठारह तथा तिरपन में दिशाएँ आठ ही मानी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिशाओं में व्याप्त होने वाली विस्तीर्ण एवं घनीभूत रश्मियाँ निर्मल आकाशरूपी वस्त्र को सम्पादित कर आप का मंगल करें[1] ॥ ४ ॥

न्यक्कुर्वन्नोषधीशे मुषितरुचि शुचेवौषधीः प्रोषिताभा
भास्वद्ग्रावोद्गतेन प्रथममिव कृताभ्युद्गतिः पावकेन ॥
पक्षच्छेदव्रणासृक्स्रुत इव दृषदो दर्शयन्प्रातरद्रे-
रातास्रस्तीव्रभानोरनभिमततुदे स्ताद्गभस्त्युद्गमो वः ॥ ५ ॥

भानु[2] की ईषत् ताम्रवर्ण वाली किरणों का आविर्भाव आप लोगों के अनिष्ट-निवारण के लिए हो जो (किरणें प्रातःकाल) औषधियों के पति चन्द्रमा के निस्तेज होने पर शोक से मानो हततेज (पत्नी की भाँति) औषधियों को तिरस्कृत करती हैं, प्रकाशित सूर्यकान्तमणियों से उत्पन्न अग्नि के द्वारा (जिनका) मानो स्वागत हो रहा है तथा उदयाचल की शिलाओं को इन्द्र[3] के द्वारा काटे गए पंखों के घाव से मानो रक्तस्राव हो रहा है, (इस प्रकार) प्रदर्शित करती हैं। ॥ ५ ॥

गई हैं किन्तु श्लोक ४, १७, ८५ तथा ९४ आदि में इनकी संख्या दश बतायी गई है। इस विषय में वैमत्य है। महाभारत (३.१३४.१७) में भी दश दिशाओं का उल्लेख किया गया है।

१. इस श्लोक का प्रथम पाद आचार्य आनन्दवर्धन कृत 'ध्वन्यालोक' के तृतीय उद्योत की सोलहवीं कारिका के वृत्तिभाग में उद्धृत किया गया है।

२. यहाँ कवि की कल्पना सचमुच औचित्य का निर्वाह कर रही है जहाँ किरणों की लालिमा को देखकर यह उत्प्रेक्षा की गई है कि इन्द्र के द्वारा काटे गए उदयाचल के पंखों के घाव से प्रवाहित शोणित से यह लाल है

३. पहले पर्वत उड़ा करते थे, जिससे देश में बड़ी क्षति पहुँचती थी। इन्द्र ने उनके पंख काट डाले और उन्हें स्थिर कर दिया। इसका आभास ऋग्वेद के इन्द्र-सूक्त के 'यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्' इत्यादि मन्त्रों में भी मिलता है। मैत्रायणी संहिता (१-१०-१३) में भी कहा गया है कि प्रजापति के ज्येष्ठ पुत्र पर्वत ही थे तथा उनके पंख थे, वे इतस्तः उड़ा करते थे। उस समय पृथ्वी भी चलायमान थी। इन्द्र ने उनके पंख काट डाले तथा उनको पृथ्वी पर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान्
दीर्घाघ्रातानघौघैः पुनरपि घटयत्येक उल्लाघयन् यः ॥
घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्ते-
र्दत्तार्घाः सिद्धसंघैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम् ॥ ६ ॥

पाप[1] समूह के कारण गलित नासिका, हस्त एवं पाद वाले, व्रण-युक्त अंगों के कारण सुदूर तक दुर्गन्ध फैलाने वाले एवं घर्घर एवं अस्पष्ट स्वरवाले जनों को भी नीरोगित कर सुगठित अंगों से युक्त कर देने वाले, हृदय में द्विगुणित दया से परवश एवं निर्विघ्न व्यापार वाले सूर्य की सिद्ध समूहों से पूजित रश्मियाँ आप लोगों के पापों को शीघ्र ही विनष्ट करें[2] ॥ ६ ॥

बिभ्राणा वामनत्वं प्रथममथ तथैवांशवः प्रांशवो वः
क्रान्ताकाशान्तरालास्तदनु दशदिशः पूरयन्तस्ततोऽपि ॥
ध्वान्तादाच्छिद्य देवद्विष इव बलितो विश्वमाश्वश्नुवानाः
कृच्छ्राण्युच्छ्रायहेलोपहसितहरयो हारिदश्वा हरन्तु ॥ ७ ॥

पहले संकीर्ण एवं तदनन्तर विस्तृत होने वाली, आकाश के मध्य भाग को आक्रान्त कर दश-दिशाओं को परिपूर्ण कर लेने वाली, अन्ध-

---

स्थिर कर पृथ्वी को भी स्थिर कर दिया। उनके पंख मेघ हो गए इसीलिए वे आज भी पर्वतों की ओर उड़ा करते हैं। पुराणों में भी इन्द्र-वज्र के द्वारा पक्ष-काटने की कथाएँ प्रायः आई हैं।

१. मम्मट कृत काव्यप्रकाश (७.३०१) में यह श्लोक रूक्ष ध्वनिवाले शब्दों के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है। मम्मट के अनुसार इस श्लोक के शब्दों की कठोरता में न कोई गुण है और न दोष ही है।

२. जनश्रुति के अनुसार इसी श्लोक का मयूर द्वारा उच्चारण करने पर भगवान् सूर्य प्रकट हुए थे तथा उन्होंने मयूर को कुष्ठ रोग से मुक्त कर दिया था सम्भव है इस जनश्रुति में सत्यांश हो क्योंकि कुष्ठ रोग में पाए जाने वाले कुछ चिह्नों का उल्लेख इसमें मिलता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कार से विश्व को बचाकर देवताओं के शत्रु बलि[1] के समान सर्वत्र फैलने वाली एवं अपनी उच्चता के कारण विष्णु का भी उपहास करने वाली, पीतवर्ण के अश्वों वाले सूर्य की, किरणें आपके समस्त क्लेशों का निवारण करें ॥ ७ ॥

उद्गाढेनारुणिम्ना विदधति बहुलं येऽरुणस्यारुणत्वं
मूर्धोद्धूतौ खलीनक्षतरुधिररुचो ये रथाश्वाननेषु ॥
शैलानां शेखरत्वं श्रितशिखरिशिखास्तन्वते ये दिशन्तु
प्रेङ्खन्तः खे खरांशोः खचितदिनमुखास्ते मयूखाः सुखं वः ॥८॥

गाढ़ लालिमा से सूर्य-सारथि अरुण[2] को अत्यधिक अरुणिमा

---

१. एक बार स्वर्ग, आकाश तथा पृथ्वी तीनों पर बलि नामक राक्षस ने विजय कर लिया। देवताओं को बड़ा कष्ट हुआ तथा उन्होंने भगवान् विष्णु की शरण ली और उनसे सहायता माँगी। विष्णु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा वामन का आकार धारण करके एवं ब्राह्मण का रूप बनाकर वह बलि के पास पहुँचे। बलि ने उनका ब्राह्मणोचित सत्कार किया। तदनन्तर विष्णु ने उससे भिक्षा रूप में अपने तीन पग के बराबर भूमि की याचना की। बलि स्वभावतः दानशील था तथा उसने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब वामन वेषधारी भगवान विष्णु दैत्याकार शरीर में परिणत हो गए। अपने प्रथम चरण तथा दूसरे चरण में स्वर्ग लाँघने के पश्चात् तीसरे चरण को रखने के लिए कोई उपयुक्त स्थान न पाकर उन्होंने वह चरण बलि के मस्तक पर रख दिया तथा उसे पाताल लोक भेज दिया। इस कथा की पुष्टि महाभारत (३.२७२.६२-६९) तथा रामायण (१.२९.४–२१) से भी होती है।

२. 'सूर्यशतक' के श्लोक ५०–६१ में सूर्य-सारथि अरुण की आराधना की गई है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार यह विनता के पुत्र एवं गरुड़ के अग्रज हैं। विनता को दो जुड़वाँ पुत्रों की माता होने का वर प्राप्त था। समय से उन्होंने दो अण्डों को जन्म दिया तथा इनको पाँच सौ वर्ष तक सेया किन्तु उनसे कोई सन्तान न होते देखकर उनका धैर्य विनष्ट हो गया। तब उन्होंने एक अण्डा फोड़ डाला। उससे अरुण उत्पन्न हुए किन्तु अवधि पूरी न होने से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रदान करने वाली, रथाश्वों[1] के सिर कँपाने पर लगाम के कारण क्षतमुख से निकलने वाले रक्त की कान्ति धारण करने वाली, पर्वत शृङ्गों पर आश्रित होकर मुकुट बन जाने वाली तथा आकाश-मार्ग में गमन करती हुई दिवस का प्रारम्भ करने वाली, भगवान् भास्कर की, रश्मियाँ आप समस्त जनों को सुख प्रदान करें ॥ ८ ॥

दत्तानन्दाः प्रजानां समुचितसमयाकृष्टसृष्टैः पयोभिः
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाजः ॥
दीप्तांशोर्दीर्घदुःखप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो वः पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु ॥ ९ ॥

समुचित समय (ग्रीष्मकालादि) में आकृष्ट[2] तथा पुनः प्रदत्त जल

उनके शरीर का निचला भाग पूर्णरूप से विकसित न हो सका था। इसी कारण आगे चलकर उन्हें 'अनूरु' कहा जाने लगा। इसका उल्लेख महाभारत (१.१६.३–२५) में हुआ है।

एक अन्य पौराणिक गाथा अरुण के सूर्य-सारथि बनने के विशेष कारण का उल्लेख करती है। इसके अनुसार जब राहु ने भगवान् सूर्य को ग्रस लिया तब किसी भी देवता ने उनकी सहायता नहीं की। तब क्रुद्ध होकर सूर्य ने त्रिलोक को अपने तेज से भस्म करने का निश्चय किया। इस अकाल-प्रलय से मुक्ति पाने के लिए देवताओं ने अरुण को सूर्य-रथके अग्रभाग पर बैठा दिया जिससे सूर्य का तेज कुछ कम हो गया। उसी समय से अरुण सूर्य-सारथि हो गए। इसका भी उल्लेख महाभारत में मिलता है।

१. 'सूर्यशतक' के ४४-४९ श्लोक में सूर्य-रथाश्वों की स्तुति की गई है। श्लोक ४५, ४७ तथा ९२ के अनुसार सूर्य-रथ में सात अश्व हैं। सूर्याश्वों का वर्ण हरा अथवा पीत माना गया है। श्लोक सात में सूर्याश्वों को पीतवर्ण माना गया है। विष्णु पुराण के अनुसार यह वेद के सात छंद हैं।

२. मयूर ने श्लेष अलंकार का प्रयोग अपने काव्य में प्रायः किया है। श्लिष्ट पदों के विन्यास में ये अत्यन्त निपुण हैं। इस श्लोक में 'गावः' का प्रयोग 'किरणों' तथा 'गायों' दोनों के अर्थ में करके मयूर ने अपनी प्रतिभा का प्रकाशन किया है। वास्तव में 'गावः' को छोड़कर अन्य शब्दों में यहाँ श्लेष नहीं है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के द्वारा प्रजाओं को आनन्द प्रदान करने वाली, दिन के पूर्वार्ध में प्रत्येक दिशा में फैलकर दिवसावसान के समय संहृत होने वाली एवं अत्यधिक दुःख के उत्पत्तिस्थान संसार से भयरूपी समुद्र के लिए नौका बनने वाली, आदित्य की, रश्मियाँ[1] आप समस्त पूतजनों को अपरिमित प्रीति प्रदान करें ॥ ९ ॥

वरन् 'शब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रमव्यंग्य' ध्वनि है। शब्द के सामर्थ्य से यहाँ गाय के अर्थ में भी समस्त श्लोक का अर्थ लिया जा सकता है। आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक के द्वितीय उद्योत में इसको उद्धृत किया है। वहाँ भी इस श्लोक में 'अनुस्वानसन्निभ संलक्ष्यक्रमव्यंग्य' ध्वनि मानी गई है तथा इसके पश्चात् ग्रन्थकार ने जो उल्लेख किया है उसका सारांश इस प्रकार है—

"इस उदाहरण में शब्दशक्ति से अप्राकरणिक दूसरे अर्थके प्रकाशित होने पर वाक्य का अर्थ असम्बद्ध न हो जाय इसलिए प्राकरणिक तथा अप्राकरणिक अर्थों में उपमानोपमेय भाव की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार शब्दसामर्थ्यवश श्लेष आक्षिप्त रूप में होता है, शब्दनिष्ठ रूप में नहीं। श्लेषालंकार से इस ध्वनि का विषय भिन्न ही है।" शब्दसामर्थ्य से आक्षिप्त पक्ष में सम्पूर्ण श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार से होगा—

"समुचित समय पर आकृष्ट पुनः प्रदत्त दुग्ध से लोगों को आनन्द प्रदान करने वाली, प्रातःकाल तृण खाने के लिए दिशाओं में विप्रकीर्ण हो जाने वाली तथा सूर्यास्त के समय पुनः घर लौटने पर संहृति को प्राप्त हो जाने वाली एवं दीर्घ दुःख के उत्पत्ति स्थान संसार से उत्पन्न भयरूपी समुद्र के लिए नौकातुल्य गायों के समान पवित्र, सूर्य की किरणें आप सभी पावन प्रजाओं को परम तथा अपरिमित सुख प्रदान करें।"

१. सूर्य की किरणों से वृष्टि होती है, ऐसा भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध है। सूर्य की किरणें ही समुद्रादि से जल का कर्षण करती हैं तथा पुनः पृथ्वी पर जलवृष्टि करती हैं। इस प्रकार का वर्णन महाभारत में आया है जहाँ 'आदित्याजायते वृष्टिः' इत्यादि कहा गया है। कालिदास के रघुवंश के प्रथम सर्ग में भी सूर्य की इस शक्ति का वर्णन 'सहस्रगुणमुत्स्रष्टमादत्ते हि रसं रविः' आदि शब्दों से किया गया है। सूर्यशतक में इस प्रकार का वर्णन श्लोक ३०, ७७ तथा ९३ में भी मिलता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

वन्धध्वंसैकहेतुं शिरसि नतिरसावद्धसंध्याञ्जलीनां
लोकानां ये प्रबोधं विदधति विपुलाम्भोजखण्डाशयेव ॥
युष्माकं ते स्वचित्तप्रथितपृथुतरप्रार्थनाकल्पवृक्षाः
कल्पन्तां निर्विकल्पं दिनकरकिरणाःकेतवः कल्मषस्य ॥१०॥

शिर पर प्रणति प्रेम से आवद्ध सन्ध्याञ्जलि वाले लोगों के बन्धन के विनाश का हेतु बनने वाली, मनुष्यों को विपुल कमल वन की भाँति प्रवुद्ध करने वाली एवं अपनी मनोनीत प्रथुतर प्रार्थना के लिए कल्पवृक्ष[1] के तुल्य, दिनकर की रश्मियाँ विना किसी विकल्प के आपके पापों को विनष्ट करें ॥ १० ॥

धारा रायो धनायापदि सपदि करालम्बभूताः प्रपाते
तत्त्वालोकैकदीपास्त्रिदशपतिपुरप्रस्थितौ वीथ्य एव ॥
निर्वाणोद्योगियोगिप्रगमनिजतनुद्वारि वेत्रायमाणा-
स्त्रायन्तां तीव्रभानोर्दिवसमुखसुखा रश्मयः कल्मषाद्वः ॥११॥

दिवस के प्रारम्भ में सुख देने वाली तीव्रभानु की किरणें आप लोगों की पापों से रक्षा करें जो धन की आवश्यकता पड़ने पर द्रव्य-धारा के समान हैं, नरक अथवा दुर्गति में शीघ्र ही हाथ का सहारा देने वाली हैं, परमार्थ दर्शित करने के लिए एकमात्र प्रदीप हैं, इन्द्र की नगरी में जाने के लिए मार्गरूप हैं एवं निर्वाण के अपुनरावृत्ति के आत्मीय तनु के द्वार पर प्रहरी की भाँति हैं ॥ ११ ॥

प्राचि प्रागाचरन्त्योऽनतिचिरमचले चारुचूडामणित्वं
मुञ्चन्त्यो रोचनाम्भः प्रचुरमिव दिशामुच्चकैश्चर्चनाय ॥
चाटूत्कैश्चक्रनाम्नां चतुरमविचलैर्लोचनैरर्च्यमाना-
श्चेष्टन्तां चिन्तितानामुचितमचरमाश्चण्डरोचीरुचो वः ॥१२॥

---

१. इन्द्र की नगरी अमरावती में पाँच वृक्ष हैं जिनमें से एक वृक्ष 'कल्पवृक्ष' भी है। यह वृक्ष मनोवाञ्छित फलों को प्रदान करता है। महाभारत (३.२८१.५) में इन वृक्षों का वर्णन आया है। वैसे भी कल्पवृक्ष से प्रायः सभी भारतीय परिचित हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राची दिशा में उदयाचल पर कुछ काल तक सुन्दर मणितुल्य आचरण करने वाली, (तदनन्तर) दिशाओं को भलीभाँति चर्चित करने के लिए प्रचुर रोचना जल छोड़ने वाली एवं चक्रवाकों[1] के चाटुकांक्षी निर्निमेष नेत्रों से अर्च्यमान, सूर्य की रश्मियाँ अभीप्सित मनोरथों के अनुकूल विधान करें ॥ १२ ॥

एकं ज्योतिर्दृशौ द्वे त्रिजगति गदितान्यब्जजास्यैश्चतुर्भि-
भूतानां पञ्चमं यान्यलमृतुषु तथा षट्सु नानाविधानि ॥
युष्माकं तानि सप्तत्रिदशमुनिनुतान्यष्टदिग्भाञ्जि भानो-
र्यान्ति प्राह्णे नवत्वं दश दधतु शिवं दीधितीनां शतानि ॥१३॥

पंचभूतों में पंचम (अर्थात् तेज), षड् ऋतुओं में भिन्न-भिन्न रूप धारण करने वाली, [2]सप्तर्षियों से प्रार्थित, आठों दिशाओं में व्याप्त तथा पूर्वाह्न में नवीन रूप धारण करने वाली भानु की सहस्र रश्मियाँ आपका कल्याण करें जो एकमात्र ज्योति हैं, दो नेत्र हैं, ऐसा तीनों लोकों में चतुर्मुख[3] ब्रह्मा के द्वारा कहा गया है[4] ॥ १३ ॥

---

१. सूर्य निकलने पर चक्रवाक-मिथुन का पुनर्मिलन होता है जो रात्रि भर वियुक्त रहते हैं, अतः वे सूर्योदय के प्रति उद्गार प्रकट करते हुए अपने निर्मिमेष लोचनों से सूर्य-रश्मियों की अर्चना करते हैं।

२. सप्तर्षियों का नाम भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न आया है। महाभारत (१२.३३५.२९) के अनुसार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वशिष्ठ सप्तर्षि हैं।

३. एक पौराणिक कथा के अनुसार ब्रह्मा को शतरूपा से प्रेम हो गया तथा इन्होंने शतरूपा को स्पृहायुक्त निर्निमेष दृष्टि से देखा। उनके इस प्रकार देखने से शतरूपा एकदम घबड़ा गई और वह दूसरी ओर मुड़ गई। किन्तु इस मुड़ने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह जिस दिशा में भी देखती उसी ओर ब्रह्मा का एक नवीन मुख सामने पड़ता था। इस प्रकार ब्रह्मा के पाँच मुख हो गए। तब शिव के क्रोध से उत्पन्न भैरव ने ब्रह्मा का एक मुख काट डाला और वह चतुर्मुख ही रह गए। (W. J. Wilkins—Hindu Mythology, II Edition, Calcutta and Simla, 1900, Page 100-103.

४. इस श्लोक से मयूर कवि ने आश्रयभेद से सूर्य रश्मियों के अनेक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

आवृत्तिश्रान्तविश्वाः श्रममिव दधतः शोषिणः स्वोष्मणेव
ग्रीष्मे दावाग्नितप्ता इव रसमसकृद्ये धरित्र्या धयन्ति ॥
ते प्रावृष्यात्तपानातिशयरुज इवोद्वान्ततोया हिमर्तौ
मार्तण्डस्याप्रचण्डाश्चिरमशुभभिदेऽभीषवो वो भवन्तु ॥१४॥

परिश्रम से क्लान्त होकर ग्रीष्म ऋतु में दावाग्नि से संतप्त मनुष्यों की भाँति पृथ्वी के रस का पान करने वाली, पुनः अधिक जलपान करने से रुग्ण की भाँति वर्षाऋतु में जल-वमन करने वाली एवं हेमन्त-काल में अप्रचण्ड दिखलाई पड़ने [1]वाली, [2]मार्तण्ड की, किरणें अधिक समय तक आपके अमंगल का विनाश करें ॥ १४ ॥

भेद-प्रभेदों की कल्पना की है। मुख्यतः वे रश्मियाँ एक ज्योतिस्वरूप हैं। पुनः सभी के नेत्रों द्वारा परिदृश्यमान होने से द्वित्व को प्राप्त होती हैं। पुनः भुवनत्रय में व्याप्त होने से त्रित्व एवं ब्रह्मा के चतुर्मुखों से निगदित होने से चतुःसंख्यात्व को प्राप्त होती हैं। पुनः इन्हें पृथ्वी आदि पंचभूतों से पञ्चम संख्या, वसन्तादि षड् ऋतुओं से षट् संख्या, अत्रि प्रभृति सप्तर्षियों से सप्त संख्या, आठों दिशाओं में व्याप्त होने से आठ संख्या और पूर्वाह्न में नवीन होने से नव संख्या वाली कहा गया है।

१. इस सम्पूर्ण श्लोक में सूर्य-रश्मियों को उपमा एक सांसारिक मनुष्य से दी गई है। ग्रीष्म में एक तृषित मनुष्य की भाँति वे (किरणें) पृथ्वी से जल खींचती हैं। अत्यधिक जल पाने से वे मनुष्य को भाँति रुग्ण हो जाती हैं तथा वर्षा-ऋतु में उसी जल का वमन करती हैं। जिस प्रकार मनुष्य वमन के पश्चात् क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार वे भी हेमन्त ऋतु में क्षीण हो जाती हैं तथा उनकी उष्णता समाप्त हो जाती है।

२. सूर्य का मार्तण्ड नाम क्यों पड़ा ? इस विषय में मार्कण्डेय पुराण (१०५.८-२०) में एक रोचक पौराणिक गाथा है। गाथा इस प्रकार है कि सूर्य की 'सुषुम्ना' किरण एकबार अदिति के गर्भाशय में प्रविष्ट हो गई। अदिति ने उपवास किया। तब अदिति के पति कश्यप ने कहा—'तुम इस प्रकार अनाहार करके गर्भाशय के अण्ड को क्यों नष्ट कर रही हो ?' इसके पश्चात् जब शिशु ने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तन्वानां दिग्वधूनां समधिकमधुरालोकरम्यामवस्था-
मारूढप्रौढिलेशोत्कलितकपिलिमालंकृतिः केवलैव ॥
उज्जृम्भाम्भोजनेत्रद्युतिनि दिनमुखे किंचिदुद्भिद्यमाना
श्मश्रुश्रेणीव भासां दिशतु दशशती शर्म घर्मत्विषो वः ॥ १५ ॥

सूर्य की मुख-रोम-राजि के समान सहस्र रश्मियाँ आपको सुख-प्रदान करें जो प्रचुर एवं मृदुआलोक से दिग्वधुओं को रम्य बना देने वाली हैं, प्रौढ़ि का लेश भान होने पर पीतवस्त्र धारण कर एकमात्र दिनपति का अलंकारभूत होने वाली हैं एवं विकसित कमल नेत्र वाले दिनमुख में किञ्चित् उद्भिन्न होने वाली हैं[1] ॥ १५ ॥

मौलीन्दोर्मैष मोषीद्द्युतिमिति वृषभाङ्केन यः शङ्किनेव
प्रत्यग्रोद्घाटिताम्भोरुहकुहरगुहासुस्थितेनेव धात्रा ॥
कृष्णेन ध्वान्तकृष्णस्वतनुपरिभवत्रस्नुनेव स्तुतोऽलं
त्राणाय स्तात्तनीयानपि तिमिररिपोः स त्विषामुद्गमो वः ॥१६॥

[2]तमरिपु का स्वल्प किरणोद्गम भी आप लोगों की रक्षा करे जो

जन्म लिया तब इस प्रकार आकाशवाणी हुई, 'हे मुनि ! क्योंकि आपने इस अण्ड को नष्ट हुआ समझ लिया था इस लिए यह आपका पुत्र मार्तण्ड (मारितम् अण्डम्) कहा जाया करेगा। इस प्रकार सूर्य का नाम मार्तण्ड पड़ गया।

१. सूर्य-रश्मियों को श्मश्रुश्रेणी के समान कहकर कवि ने उपमा का निर्वाह करने के लिए 'दिन-मुख' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जिस प्रकार श्मश्रु-श्रेणि मुख में उद्भिन्न होती है, उसी प्रकार रश्मियाँ दिनमुख में उद्भिन्न होती हैं।

२. यहाँ शिव, ब्रह्मा तथा कृष्ण से सूर्य को स्तुत्य बताकर कवि ने सूर्य-महिमा का द्योतन किया है। इस प्रकार इन देवताओं से उनकी महत्ता का भी प्रकटन किया है। इसका वर्णन 'सूर्यशतक' के ८८, ९१, ९२ तथा ९३ श्लोकों में भी मिलता है जहाँ सूर्य भगवान की तुलना ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से की गई है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'कहीं यह हमारे मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की द्युति को न नष्ट कर दे' इस प्रकार शङ्कित वृषभाङ्क भगवान शिव से स्तुत हैं, तत्काल विकसित कमल के गृहगर्भ में सुखपूर्वक स्थित ब्रह्मा से प्रार्थित हैं एवं जो अन्धकार के समान अपने श्याम शरीर के परिभव से भीत कृष्ण के द्वारा स्तुत्य हैं ॥ १६ ॥

विस्तीर्णं व्योम दीर्घाः सपदि दश दिशो व्यस्तवेलाम्भसोऽब्धीन्
कुर्वद्भिर्दृश्यनानानगनगरनगाभोगपृथ्वीं च पृथ्वीम् ॥
पद्मिन्युच्छ्वास्यते यैरुषसि जगदपि ध्वंसयित्वा तमिस्रा-
मुस्रा विस्रंसयन्तु द्रुतमनभिमतं ते सहस्रत्विषो वः ॥१७॥

व्योम को विस्तीर्ण, दश दिशाओं को दीर्घ, तटवर्ती जल तक समुद्र को व्याप्त, दृश्यमान नाना प्रकार के पर्वत, नगर तथा वृक्षों के रूप में पृथ्वी को विस्तीर्ण करनेवाली एवं प्रातःकाल रात्रि अथवा अन्धकार को नष्ट करके पद्मिनी और जगत् को विकसित करनेवाली, सहस्ररश्मि की रश्मियाँ आप लोगों के अनिष्ट को शीघ्र ही नष्ट करें ॥ १७ ॥

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो
विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि ॥
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो वः ॥१८॥

[1]जिस प्रकार एकदेशस्थित दीपक गृह को अन्धकार-शून्य कर देता है, उसी प्रकार एकदेशस्थित होते हुए भी विश्व को अन्धकार-रहित करने में समर्थ, विनाश-व्यसनरहित एवं अपने तेज से निशा

१. यह श्लोक कवि क्षेमेन्द्र कृत 'कविकण्ठाभरण' (४-१-२) में उद्धृत किया गया है। उसके चतुर्थ अध्याय में गुण तथा दोष का विवेचन है। इसी प्रसंग में यह श्लोक उद्धृत किया गया है और इसके गुण एवं दोषों की विवेचना की गई है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को नष्ट करनेवाली एवं दिशा तथा काल की अपेक्षा इन्द्र-दिशा[1] में उदित होने के कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकों में पर्यटन करनेवाले सूर्य को, किरणें आप लोगों का कल्याण करें ॥ १८ ॥

मा गान्म्लानिं मृणाली मृदुरिति दययेवाप्रविष्टोऽहिलोकं
लोकालोकस्य पार्श्वं प्रतपति न परं यस्तदाख्यार्थमेव ॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डस्फुटनभयपरित्यक्तदैर्घ्यो द्युसीम्नि
स्वेच्छावश्यावकाशावधिरवतु स वस्तापनो रोचिरोघः ॥१९॥

मृणाली के समान मृदु सर्पलोक दुःखी न हो इसीलिए नागलोक में प्रवेश न करनेवाला, लोकालोक[2] की संज्ञा व्यर्थ न हो अतएव उसके दूसरे भाग में प्रकाशित न होनेवाला, ब्रह्माण्ड[3] खण्ड के फूट जाने के भय से ऊपर अपनी दीर्घता को त्याग देनेवाला एवं आकाश में स्वेच्छा से अपनी स्थान-मर्यादा को निश्चित करनेवाला, सूर्य का, दीप्तपुंज आपकी रक्षा करे ॥ १९ ॥

---

१. इन्द्र की दिशा पूर्व दिशा कही गई है। अमरकोष के अनुसार आठ दिशाओं के लोकपाल निम्न हैं—इन्द्र, अग्नि, पितृपति, राक्षस, वरुण, मरुत्, कुवेर तथा शिव। इनका वर्णन 'सूर्यशतक' के ५८ वें श्लोक में भी आया है।

२. पौराणिक गाथा के अनुसार लोकालोक एक पर्वत श्रेणि है जो पृथ्वी को विस्तृत व्योम से पृथक् करती है। इसके एक ओर सूर्य का प्रकाश होता है तथा दूसरी ओर अन्धकार रहता है। इसी कारण इसे लोकालोक (प्रकाशमान तथा अप्रकाशमान) कहा जाता है। यह पर्वत इतना ऊँचा है कि सूर्य, चन्द्रमा अथवा नक्षत्र समूह की किरणें इसके ऊर्ध्वस्थान तक नहीं पहुँच सकती हैं। इसीलिए इसका शिखर नील वर्ण का रहता है। इसका उल्लेख भागवत-पुराण में मिलता है। महाकवि कालिदास कृत रघुवंश महाकाव्य के पहले सर्ग के ६८ वें श्लोक में भी इसका उल्लेख मिलता है।

'सोऽहमिज्या विशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥ (रघुवंश)

३. ब्रह्माण्ड से संसार की उत्पत्ति प्रायः सभी पुराणों में कही गई है। विष्णुपुराण में इसका वर्णन आया है। मनुस्मृति में भी इसका उल्लेख मिलता

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

अश्यामः काल एको न भवति भुवनान्तोऽपि वीतेऽन्धकारे
सद्यः प्रालेयपादो न विलयमचलश्चन्द्रमा अप्युपैति ॥
बन्धः सिद्धाञ्जलीनां न हि कुमुदवनस्यापि यत्रोज्जिहाने
तत्प्रातः प्रेक्षणीयं दिशतु दिनपतेर्धाम कामाधिकं वः ॥२०॥

प्रातःकाल दर्शनीय दिनपति का तेज आप लोगों को अत्यधिक अभिलषित प्रदान करे जिसके उदित होने पर केवल दिवस रूपी काल ही कालिमारहित नहीं हो जाता अपितु समस्त संसार तमोरहित हो जाता है, हिमप्रधान पर्वत ही विगलित नहीं होते अपितु हिमकिरण भी क्षीण हो जाता है, सिद्धों की अञ्जलियाँ ही नहीं बद्ध होतीं अपितु कुमुदवन भी बद्धपुट हो जाता है ॥ २० ॥

यत्कान्तिं पङ्कजानां न हरति कुरुते प्रत्युताधिक्यरम्यां
नो धत्ते तारकाभां तिरयति नितरामाशु यन्नित्यमेव ॥
कर्तुं नालं निमेषं दिवसमपि परं यत्तदेकं त्रिलोक्या-
श्चक्षुः सामान्यचक्षुर्विसदृशमघभिद्भास्वतःस्तान्महो वः ॥२१॥

सामान्य नेत्र[1] से विलक्षण त्रिलोक का एक अद्वितीय चक्षु, काल-

---

है। सूर्य की किरणें ब्रह्माण्ड खण्ड में इसलिए नहीं प्रवेश करती हैं क्योंकि संसार इसी ब्रह्माण्ड खण्ड में स्थित माना गया है। इसलिए किरणों के ताप से इसके नष्ट हो जाने का भय है।

१. साधारण नेत्र कमल के सौंदर्य का अपहरण करते हैं। संस्कृत साहित्य में 'कमलनयन' की उक्ति तो प्रसिद्ध ही है। 'कमल' उपमेय है तथा नेत्र उपमान हैं। कमल का ही नेत्रों में अनुकरण होता है अतएव वह कमल की शोभा का अपहरण करता है किन्तु सूर्य का तेज कमलों को कान्ति प्रदान करता है। यही उसकी साधारण नेत्र से विलक्षणता है। इसके अतिरिक्त सामान्य चक्षु एक क्षण से अधिक निर्निमेष नहीं रह सकता है किन्तु सूर्य का तेज सम्पूर्ण त्रिलोक में निर्निमेष रूप से प्रकाशित होता है, यह भी साधारण नेत्र से उसका विशेष गुण है। इसीलिए सूर्य के तेज को अद्वितीय चक्षु कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विशेष को ही करने में समर्थ नहीं अपितु दिन करने में भी समर्थवान, कमलों की कान्ति का अपहरण न करके उसे अधिक रमणीय बनानेवाला एवं तारों की प्रभा धारण न करके उसे शीघ्र ही तिरस्कृत कर देनेवाला, रवि का तेज आप समस्त जनों के पापों को नष्ट करे ॥२१॥

क्ष्मां क्षेपीयः क्षपाम्भःशिशिरतरजलस्पर्शतर्षादृतेव
द्रागाशा नेतुमाशाद्विरदकरसरःपुष्कराणीव बोधम् ॥
प्रातः प्रोल्लङ्घ्य विष्णोः पदमपि घृणयेवातिवेगाद्दवीय-
स्युद्दाम द्योतमाना दहतु दिनपतेर्दुर्निमित्तं द्युतिर्वः ॥ २२ ॥

रात्रि की ओस के अत्यन्त शिशिर जल की अभिलाषा से पृथ्वी पर आने वाली, दिग्गजों[1] के शुण्ड रूपी सरोवरों के कमलों[2] को विकसित करने के लिए शीघ्र ही दिशाओं में फैल जानेवाली, प्रातःकाल विष्णु के पद को घृणा से उल्लंघित करके शीघ्र ही बहुत दूर चली जानेवाली एवं प्रचण्डता के साथ प्रकाशित होनेवाली, सूर्य की प्रभा आप समस्त जनों के अनिष्ट का निवारण करे ॥ २२ ॥

नो कल्पापायवायोरदयरयदलत्क्ष्माधरस्यापि गम्या
गाढोदीर्णोज्ज्वलश्रीरहनि न रहिता नो तमःकज्जलेन ॥

---

१. पौराणिक गाथाओं के अनुसार आठ दिशाओं की रक्षा करनेवाले आठ दिग्गज माने गये हैं। ये दिग्गज निम्न हैं—ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अन्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम तथा सुप्रतीक। इसका वर्णन अमरकोष में इस प्रकार आया है—

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजः ॥ (अमरकोष, १.३.७६)

२. हाथी के शुण्ड का अग्रभाग खाद्य पदार्थों का ग्रहण करने के लिए खुलता है। हाथी के शुण्ड को कमल से तुलना करने का कारण उन दोनों में 'खुलना' अथवा कमल में 'विकसित होना' समान धर्म हैं। शुण्ड के अग्रभाग की कल्पना कमलों के रूप में है। अतएव यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्तोत्पत्तिः पतङ्गान्न पुनरुपगता मोषमुष्णत्विषो वो
वर्तिः सैवान्यरूपा सुखयतु निखिलद्वीपदीपस्य दीप्तिः ॥२३॥

[1]तमोरूप कज्जल से सर्वथा रहित, पतंग (सूर्य) से उत्पन्न होने वाली न कि पतंगों (कीटविशेष) से खण्डित होने वाली, तीव्र वेग से पर्वतों को भी विदलित करनेवाले कल्प[2] वायु से भी न बुझनेवाली एवं दिन में गाढ़ एवं उज्ज्वल प्रकाश उद्गिरण करनेवाली, सम्पूर्ण द्वीपों[3] के दीपक उष्णकान्ति सूर्य की, सर्वथा विलक्षण कान्ति रूपी वर्तिका आप लोगों को सुख-प्रदान करे ॥ २३ ॥

निःशेषाशावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्तिं नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ॥

१. यह श्लोक आनन्दवर्धनाचार्यकृत 'ध्वन्यालोक' के दूसरे उद्योत की उन्नीसवीं कारिका की वृत्ति में व्यतिरेक के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए ग्रंथकार ने कहा है 'अत्र हि साम्यप्रपञ्चप्रतिपादनं विनैव व्यतिरेको दर्शितः। ध्वनिवाद में अलंकारों का वर्णन करते समय कवि ने इसे उद्धृत किया है।

२. पुराणों के अनुसार एक कल्प ४,२९,४०,८०,००० वर्षों का होता है। इतने समय में ब्रह्मा का केवल एक दिन होता है। प्रत्येक कल्प के अन्त में त्रिलोक भर में अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। तदनन्तर ब्रह्मा समुद्र में विलीन हो जाते हैं। और तब ब्रह्मा की एक रात्रि होती है जो उतनी ही अवधि की होती है, जितनी अवधि का उनका एक दिन होता है। तदनन्तर ब्रह्मा की निद्रा भंग होती है और वे नारायण (विष्णु) के रूप में शेषनाग पर बैठकर पुनः सृष्टि करते हैं। विष्णु पुराण में यह वर्णन मिलता है।

३. द्वीप पृथ्वी के भौगोलिक विभाजन थे। पुराणों के अनुसार यह द्वीप केवल सात हैं। ये कमल की पंखुड़ियों के समान एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं और प्रत्येक को एक समुद्र दूसरे से पृथक् करता है। इन सब द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप है जिसमें भारतवर्ष स्थित है। इसका भी वर्णन विष्णु पुराण में मिलता है।

CC-0.In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अत्यन्तं यानभिज्ञां क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तुं
ब्रध्नस्येद्धा सचिर्वो रुचिरिव रुचितस्याप्तये वस्तुनोऽस्तु ॥२४॥

[1]सम्पूर्ण दिशाओं को (प्रकाश से) पूर्ण करने में व्यस्त रहने के कारण उत्तम गुणों से प्रशंसनीय एक क्षण भी अन्धकार के साथ निवास करने में अत्यन्त अनभिज्ञ, एवं केवल उदय (ही) रहनेवाली एवं दीप्त अभिलाषा के समान, सूर्य की, प्रदीप्त कान्ति आप लोगों की इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हो ॥ २४ ॥

बिभ्राणः शक्तिमाशु प्रशमितबलवत्तारकौर्जित्यगुर्वीं
कुर्वाणो लीलयाधः शिखिनमपि लसच्चन्द्रकान्तावभासम् ॥
आदध्यादन्धकारे रतिमतिशयिनीमावहन्वीक्षणानां
बालो लक्ष्मीमपारामपर इव गुहोऽहर्पतेरातपो वः ॥ २५ ॥

[2]अत्यधिक नक्षत्रों के तेज को प्रशमित करनेवाले सामर्थ्य को

---

१. यहाँ कवि ने श्लिष्टात्मक पदों का विन्यास कर बड़े ही औचित्य का निर्वाह किया है। श्लेष से यहाँ सूर्य-कान्ति को इच्छा के समान बताया गया है। 'इच्छा' पक्ष में इस श्लोक का अर्थ निम्न होगा। 'सभी आशाओं को पूर्ण करने में समर्थ इच्छा की प्रकृति उत्तम गुणों के कारण श्लाघनीय है, वैभव काल में ही यह (इच्छा) उन्नत नहीं रहती है अपितु वैभव के अभाव में भी यह उन्नत रहती है। क्षणमात्र भी अपने इच्छित विषय के अभाव में न रहनेवाली इच्छा के सदृश, सूर्य की, प्रदीप्त कान्ति आप लोगों की इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हो।

२. यहाँ भी कवि ने सूर्य के बालातप को कार्तिकेय के समान मान कर बड़े ही औचित्य का निर्वाह किया है। श्लिष्टात्मक पदों के विन्यास से कार्तिकेय-पक्ष में इसका अर्थ निम्न होगा—

बलवान तारकासुर की ओजस्विता को नष्ट करनेवाली अपनी महान् शक्ति (आयुधविशेष) को धारण करनेवाले, पुच्छ के प्रकाशमान चन्द्रकों से युक्त, मयूर को विलासपूर्वक अपना वाहन बनानेवाले एवं अन्धकासुर के शत्रु (शिव) के नेत्रों को अत्यधिक सुख-प्रदान करने वाले कार्तिकेय के समान, सूर्य का, बालातप आप लोगों को समृद्धि प्रदान करे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धारण करनेवाला, अग्नि और चन्द्र की सुन्दर कान्ति को भी तिरस्कृत करनेवाला, अन्धकार के समय नेत्रों को अत्यधिक सुख प्रदान करनेवाला एवं दूसरे कार्तिकेय[1] के समान, सूर्य का, बालातप आप लोगों को अपार समृद्धि प्रदान करे ॥ २५ ॥

ज्योत्स्नांशाकर्षपाण्डुद्युति तिमिरमषीशेषकल्माषमीष-
ज्जृम्भोद्भूतेन पिङ्गं सरसिजरजसा संध्यया शोणशोचिः ॥
प्रातःप्रारम्भकाले सकलमपि जगच्चित्रमुन्मीलयन्ती
कान्तिस्तीक्ष्णत्विषोऽक्ष्णां मुदमुपनयतात्तूलिकेवातुलां वः ॥२६॥

दिवस के प्रारम्भ में (चित्रकार की) तूलिका के समान सम्पूर्ण संसार को चित्रित करने वाली, सूर्य की, कान्ति आपके नेत्रों को अपरिमित सुख प्रदान करे। यह (संसार) चन्द्रमा की शोभा के अवशिष्ट रहने से शुभ्र कान्ति वाला, अन्धकार की मसी शेष रहने से काला, किञ्चित् विकसित होने से दृश्यमान कमल-पराग से पीत एवं (प्रातःकालीन) सन्धिप्रकाश से रक्तवर्ण हो जाता है[2] ॥ २६ ॥

---

१. भगवान कार्तिकेय शिव तथा पार्वती के पुत्र हैं। महाभारत में इनके जन्म की कथा अनेक प्रकार से दी गई है। एक स्थान पर इन्हें अग्नि तथा स्वाहा का पुत्र बतलाया गया है किन्तु आगे (६. २३. १२) दुर्गा (चण्डी) को स्वाहा से अभिन्न माना गया है तथा वहीं (६. २३. ११ में) उनको स्कन्द (कार्तिकेय) की माता भी बताया गया है। इसी तथ्य को हम और भी स्पष्ट कर सकते हैं। कालिदासकृत रघुवंश के द्वितीय सर्ग में जहाँ राजा दिलीप तथा सिंह का संवाद है, वहाँ भी पार्वती को स्कन्दमाता कहा गया है।

'अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥

२. यहाँ कवि ने एक चित्र के रूप में संसार की कल्पना की है। जिस प्रकार एक चित्रकार अपनी तूलिका से श्वेत, कृष्ण, पीत तथा अरुण आदि रंगों से चित्र को चित्रित करता है, उसी प्रकार सूर्योदय के समय सूर्य-प्रभा चित्रकार की तूलिका के समान जगत में उपर्युक्त रंगों का दर्शन कराती है, जिसके कारण यह जगत चित्र के सदृश प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आयान्ती किं सुमेरोः सरणिररुणिता पद्मरागैः परागै-
राहोस्वित्स्वस्य माहारजनविरचिता वैजयन्ती रथस्य ॥
माञ्जिष्ठी प्रष्ठवाहावलिविधुतशिरश्चामराली नु लोकै-
राशङ्क्यालोकितैवं सवितुरघनुदे स्तात्प्रभातप्रभा वः ॥२७॥

क्या यह सुमेरु पर्वत से आने वाली पद्मरागमणि के पराग की अरुणिम सरणि है ? अथवा सूर्यरथ की कुसुम्भी रंग की निर्मित पताका है ? अथवा श्रेष्ठ अश्वों की पंक्तियों के कम्पित मस्तकों पर स्थित मंजिष्ठा रंग वाली चामरों की पंक्ति है ? इस प्रकार आशंकित होकर सांसारिक जिसे देखते हैं, वह सूर्य की प्रभात-प्रभा आप लोगों के पापों के विनाश के लिए हो ॥ २७ ॥

ध्वान्तध्वंसं विधत्ते न तपति रुचिमन्नातिरूपं व्यनक्ति
न्यक्त्वं नीत्वापि नक्तं न वितरतितरां तावदह्नस्त्विषं यः ॥
स प्रातर्मा विरंसीदसकलपटिमा पूरयन्युष्मदाशा-
माशाकाशावकाशावतरणतरुणप्रक्रमोऽर्कप्रकाशः ॥ २८ ॥

अन्धकार[1] का विनाश तो करने वाला किन्तु तीक्ष्णता से न तपने वाला रात्रि को तिरस्कृत करके भी दिवस को अत्यधिक कान्ति न प्रदान करने वाला[2], एवं दिशाओं और गगन के मध्यभाग में उतरने के लिए नूतन उद्योग करने वाला, सूर्य का, प्रातःकालीन प्रकाश आप लोगों की आशाओं को पूर्ण करने से कभी विमुख न हो ॥ २८ ॥

---

१. 'ध्वान्तध्वंसं विधत्ते……' आदि श्लोक का प्रथम पाद श्लिष्ट है तथा श्लेष से इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार होगा—'जो अज्ञान का विनाश तो करता है किन्तु स्वेच्छा से कष्ट नहीं देता है एवं अत्यधिक आत्मश्लाघा भी नहीं करता है ।'

२. "न्यक्त्वं नीत्वाऽपि नक्तं न वितरतितरां तावदह्नस्त्वि त्विषां यः" इत्यादि श्लोक के द्वितीय चरण का पाठ कहीं-कहीं भिन्न मिलता है । वहाँ 'अपि' तथा 'न' शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है । अतएव उस पाठ के अनुसार इस पाद का अर्थ इस प्रकार होगा—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

तीव्रं निर्वाणहेतुर्यदपि च विपुलं यत्प्रकर्षेण चाणु
प्रत्यक्षं यत्परोक्षं यदिह यदपरं नश्वरं शाश्वतं च ॥
यत्सर्वस्य प्रसिद्धं जगति कतिपये योगिनो यद्विदन्ति
ज्योतिस्तद् द्विप्रकारं सवितुरवतु वो बाह्यमाभ्यन्तरं च ॥२९॥

जगत में सभी प्राणियों में प्रसिद्ध होने पर भी कुछ ही योगियों के द्वारा ज्ञानगम्य, नश्वर होते हुए भी नित्य, समीपस्थ होते हुए भी दूरस्थ, प्रत्यक्ष होते हुए भी परोक्ष, विस्तीर्ण होते हुए भी अत्यधिक अणुरूप एवं तीव्र होते हुए भी मोक्ष की हेतुभूत, सूर्य की बाह्य[1] तथा अन्तः दोनों प्रकार की ज्योति आपकी रक्षा करे ॥ २९ ॥

रत्नानां मण्डनाय प्रभवति नियतोद्देशलब्धावकाशं
वह्नेर्दार्वादि दग्धुं निजजडिमतया कर्तुमानन्दमिन्दोः ॥
यच्च त्रैलोक्यभूषाविधिरघदहनं ह्लादि वृष्ट्याशु तद्वो
बाहुल्योत्पाद्यकार्याधिकतरमवतादेकमेवार्कतेजः ॥ ३० ॥

रत्नों की कान्ति केवल नियत स्थानों (कर्ण, कण्ठादि) की शोभा-वृद्धि करने में समर्थ है, अग्नि (का दाहकत्व) काष्ठादि के ही दहन में समर्थ है, शशि अपनी शीतलता के कारण आनन्द ही प्रदान कर सकता है किन्तु त्रैलोक्य की शोभा में वृद्धि करने वाला, पाप-दहन

'जो अपने विरोधी रात्रि का तिरस्कार करके अपने मित्र दिवस की शोभा में वृद्धि करता है ।"

१. इस श्लोक में वर्णित विरोध सूर्य के भौतिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप-भेद के कारण है । सूर्य का भौतिक स्वरूप साधारण प्राणियों को ज्ञात होता है तथा वही इसका बाह्य स्वरूप है । सूर्य का आध्यात्मिक स्वरूप योगाभ्यास करने वाले योगियों को ज्ञात होता है और वही उसका आन्तरिक स्वरूप है । त्रिभुवनपाल-विरचित 'सूर्यशतक' टीका में व्यासादि आठ योगियों को सूर्य के आन्तरिक स्वरूप का ज्ञाता कहा गया है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने वाला एवं वृष्टि[1] के द्वारा शीघ्र ही आनन्द प्रदान करने वाला, एकमात्र सूर्य का, तेज ही आधिक्य से कार्य सम्पन्न करने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूर्य का ऐसा तेज आपकी रक्षा करे ॥ ३० ॥

मीलच्चक्षुर्विजिह्मश्रुति जडरसनं निघ्नितघ्राणवृत्ति
स्वव्यापाराक्षमत्वक्परिमुषितमनः श्वासमात्रावशेषम् ॥
विस्रस्ताङ्गं पतित्वा स्वपदपहरतादश्रियं वोऽर्कजन्मा
कालव्यालावलीढं जगदगद इवोत्थापयन्प्राक्प्रतापः ॥ ३१ ॥

सूर्य से उत्पन्न नवीन तेज आप लोगों की असमृद्धि का विनाश करे जो काल-सर्प से ग्रस्त अथवा दष्ट तथा सोये हुए संसार को विषापहारी भेषज प्रयोग के समान जाग्रत करता है। (सर्पदष्ट व्यक्ति के समान)

---

१. सूर्य-किरणें ग्रीष्मकाल में समुद्र के जल का पान करती हैं तथा वही जल मेघरूप में परिणत हो जाता है। रामायण में इस बात का उल्लेख है और वहाँ भी समुद्रों के जल का पान सूर्य-किरणों द्वारा ही कराया गया है, यद्यपि वहाँ जल-पान का श्रेय आकाश को प्रदान किया गया है तथापि किरणों की सहायता भी आवश्यक बतायी गई है।

'नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥'

(सूर्य की किरणों की सहायता से समुद्रों के रस का पान करके आकाश नवमास तक गर्भरूप से धारण किए हुए रसायन (जल) को (वर्षाकाल में) वृष्टि द्वारा जन्म देता है।) यहाँ सूर्य की किरणों को प्रत्यक्ष रूप से वृष्टि का कारण नहीं बताया गया है, इन्हें आकाश का सहायक माना गया है। किन्तु महाभारत (१२. १६३. ११) में इस तथ्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख है तथा वहाँ सूर्य की किरणों को ही ग्रीष्मकाल में कर्षित जल के द्वारा वृष्टि का कारण बताया गया है।

"आदित्याज्जायते वृष्टिः"—सूर्य से ही वृष्टि होती है।

आदित्य से वृष्टि का वास्तविक अर्थ यही है कि सूर्य की किरणें ही ग्रीष्मकाल में कर्षित जल से वृष्टि करती हैं। इस प्रकार का वर्णन सूर्यशतक के श्लोक ९ में भी प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस संसार के नेत्र निमीलित रहते हैं, श्रवणशक्ति क्षीण हो जाती है, रसनेन्द्रिय जड़ हो जाती है, सूँघने की क्रिया समाप्त हो जाती है, त्वगिन्द्रिय स्पर्श-व्यापार में अक्षम रहती है, मन अपहृत रहता है, शरीर अस्त-व्यस्त रहता है, केवल निःश्वासमात्र शेष रहती है[1] ॥ ३१ ॥

निःशेषं नैशमम्भः प्रसभमपनुदन्नश्रुलेशानुकारि
स्तोकस्तोकापनीतारुणरुचिरचिरादस्तदोषानुषङ्गः ॥
दाता दृष्टिं प्रसन्नां त्रिभुवननयनस्याशु युष्मद्विरुद्धं
वध्याद् ब्रध्नस्य सिद्धाञ्जनविधिरपरः प्राक्तनोऽर्चिःप्रचारः॥३२॥

अबाध्य अग्नि का विधाता, शुद्ध बुद्धि प्रदान करने के कारण सिद्ध अंजन की विधि, रात्रि-जल को अश्रुबिन्दु के सदृश बलात् नष्ट कर देने वाला, दिवस की लालिमा को समाप्त करने वाला एवं शीघ्र ही रात्रि से सम्बन्ध-विच्छेद करने वाला, सूर्य का, पूर्वकालीन रश्मि-प्रसार आप लोगों के अहित का विनाश करे[2] ॥ ३२ ॥

---

१. इस श्लोक में कवि ने सोए हुये संसार की तुलना सर्पदष्ट मनुष्य से करके अपूर्व औचित्य का निर्वाह किया है। सूर्य-रश्मियों की तुलना उस भेषज से की गई है जो सर्पदष्ट मनुष्य के समान सोए हुए संसार को पुनः चेतनावस्था में लाता है। उपमालंकार के अन्य सुन्दर उदाहरण हमें श्लोक २६, ३४ तथा ५० में प्राप्त होते हैं।

२. यहाँ कवि ने सम्पूर्ण श्लोक में श्लिष्ट पदों का विन्यास कर सूर्य-रश्मियों की तुलना सिद्ध अंजन से की है। अंजन पक्ष में श्लोक का अर्थ निम्न होगा—'नयन जल के समान रात्रि-जल (ओस) को निश्शेष रूप से हठात् दूर करने वाला, धीरे-धीरे नेत्रों की लालिमा के समान अरुण-सारथि की अरुण द्युति मिटाने वाला, तथा नेत्रों के कामलादि दोषों के समान रात्रि-सम्पर्क को मिटाकर त्रिभुवन-नयनों को स्वच्छ दृष्टि प्रदान करने वाले सिद्धाञ्जन-विधि की भाँति, सूर्य का, पूर्वकालीन रश्मि-प्रसार आप लोगों के अहित का विनाश करे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूत्वा जम्भस्य भेत्तुः ककुभि परिभवारम्भभूः शुभ्रभानो-
विभ्राणा बभ्रुभावं प्रसभमभिनवाम्भोजजृम्भाप्रगल्भा ॥
भूषा भूयिष्ठशोभा त्रिभुवनभवनस्यास्य वैभाकरी प्राग्-
विभ्रान्ति भ्राजमाना विभवतु विभवोद्भूतये सा विभा वः ॥३३॥

नूतन कमल को प्रबुद्ध करने में अत्यन्त विदग्ध, जम्भ-शत्रु (इन्द्र) की दिशा (पूर्वदिशा) को ईषत् ताम्रवर्ण धारण करने वाली एवं त्रिलोक-प्रासाद के लिए विशेषरूप से शोभायमान आभूषण बन जाने वाली, विभाकर को, विशेषरूप से प्रकाशित होने वाली प्रभा आप लोगों के वैभव की उत्पत्ति में समर्थ हो ॥ ३३ ॥

संसक्तं सिक्तमूलादभिनवभुवनोद्यानकौतूहलिन्या
यामिन्या कन्ययेवामृतकरकलशावर्जितेनामृतेन ॥
अर्कालोकः क्रियाद्वो मुदमुदयशिरश्चक्रवालालवाला-
दुद्यन्बालप्रवालप्रतिमरुचिरहःपादपप्राक्प्ररोहः ॥ ३४ ॥

दिवसरूपो वृक्ष का प्रथमांकुर, उदयाचल के शिखर-मण्डलरूपी नवीन भुवनोद्यान का निर्माण करने में कुतूहलपूर्ण कन्या के समान यामिनी द्वारा चन्द्रमारूपी कलश से उड़ेले गए अमृत से निरन्तर सिक्त एवं नवकिसलय के समान कान्ति वाला, आलवाल से निकलने वाला, अर्क का तेज आप लोगों को आनन्द प्रदान करे[1] ॥ ३४ ॥

---

१. प्रस्तुत श्लोक में कवि मयूर ने रूपकालंकार का अत्यन्त सुन्दर ढंग से उपनिबन्धन किया है। यहाँ कवि ने सद्यः अंकुरित वृक्ष में दिवस का आरोप किया है। इस वृक्ष का आलवाल उदयाचल का शिखर-मण्डल है। चन्द्रमा में वृक्ष के सिंचन-हेतु कलश का आरोप कर कवि ने अपनी उक्ति का औचित्य सिद्ध कर दिया है। भुवन में उद्यान का आरोप कर यहाँ कवि ने उद्यान में प्राप्त समस्त सामग्रियों को दिवस-तरु की प्रशंसा के लिए एकत्रित कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

भिन्नं भासारुणस्य क्वचिदभिनवया विद्रुमाणां त्विषेव
त्वङ्गन्नक्षत्ररत्नद्युतिनिकरकरालान्तरालं क्वचिच्च ॥
नान्तर्निःशेषकृष्णश्रियमुदधिमिव ध्यान्तराशिं पिबन्स्ता-
दौर्वः पूर्वोऽप्यपूर्वोऽग्निरिव भवदघप्लुष्टयेऽर्कावभासः ॥ ३५ ॥

सूर्य का प्राचीन होते हुए भी सदा नवीन एक अपूर्व वडवानल के समान तेज आप लोगों के पापों का विनाश करे, जो (तेज) उदधि के समान तमोराशि का पान करता है, जो विद्रुमों की कान्ति के समान अरुण की अभिनव कान्ति से भिन्न है, जिसका अन्तराल कम्पमान रत्नों के समान नक्षत्रों के द्युतिसमूह से विषमोन्नत है तथा जिसका अन्तराल पूर्णरूप से कृष्ण शोभा से युक्त नहीं है[1] ॥ ३५ ॥

गन्धर्वैर्गद्यपद्यव्यतिकरितवचोहृद्यमातोद्यवाद्यै-
राद्यैर्यो नारदाद्यैर्मुनिभिरभिनुतो वेदवेद्यैर्विभिद्य ॥
आसाद्यापद्यते यं पुनरपि च जगद्यौवनं सद्य उद्य-
न्नुद्योतो द्योतितद्यौर्द्यतु दिवसकृतोऽसाववद्यानि वोऽद्य ॥३६॥

जगतको पुनः नव-यौवन प्रदान करने वाला, गद्य-पद्य से मिश्रित

---

१. श्लेषालंकार का विन्यास कर मयूर ने यहाँ अन्धकार की राशि की तुलना समुद्र से की है एवं सूर्य-तेज की तुलना वडवानल से की है। समुद्रपक्ष में श्लोक का अर्थ इस प्रकार होगा—

यत्र-तत्र नूतन विद्रुमों की कान्ति से दन्तुर, नक्षत्रों के समान चमकते हुए विद्रुमों की कान्ति से पूर्ण धरातल वाले एवं शेषनाग, कृष्ण और लक्ष्मी से अशून्य समुद्र के समान अन्धकार का पान करने वाला, प्राचीन होते हुए भी सदैव नवीन, सूर्य का, तेज आप लोगों के पापों का विनाश करे जो वडवानल के समान है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनोहर वाक्यों के द्वारा एवं आतोद्य[1] वाद्यों के साथ गन्धर्वों के द्वारा ही नहीं अपितु वेद-वेद्य नारद आदि प्रमुख मुनियों के द्वारा भी स्तुत, सूर्य का, आकाश को प्रकाशित करने वाला सद्यः नवोदित प्रकाश आप लोगों के पापों का विनाश करे ॥ ३६ ॥

आवानैश्चन्द्रकान्तैश्च्युततिमिरतया तानवात्तारकाणा-
मेणाङ्कालोकलोपादुपहतमहसामोषधीनां लयेन ॥
आरादुत्प्रेक्ष्यमाणा क्षणमुदयतटान्तर्हितस्याहिमांशो-
रामा प्राभातिकी वोऽवतु न तु नितरां तावदाविर्भवन्ती ॥३७॥

सूखती हुई चन्द्रकान्त[2] मणियों द्वारा तथा अन्धकार के नष्ट हो जाने से,

---

१. भारत में प्राचीनकाल से ही संगीत का विशेष महत्त्व रहा है। गान के साथ-साथ वाद्य-यंत्रों की सहायता से देवताओं को प्रसन्न किया जाता था। आतोद्य वाद्य प्रमुख रूप से चार प्रकार के माने गये हैं—तत, वितत, आनद्ध तथा सुषिर। तत में वीणा तथा सितार आदि, वितत में झाँझ तथा मँजीरा आदि, आनद्ध में ढोल तथा मुरज आदि एवं सुषिर के अन्तर्गत वंशी आदि वाद्य-यन्त्र आते हैं। त्रिभुवनपाल कृत सूर्यशतक टीका में इसका उल्लेख निम्न प्रकार से आया है—

आतोद्यवाद्यं चतुर्विधम्—ततं विततं आनद्धम् घनं सुषिरमिति। ततं वीणादिकम्। विततं घनं कास्यं तालादिकम्। घनं आनद्धम् मुरजादिकम्। सुषिरं वंशादिकम्।

२. चन्द्रकान्त मणि एक विशेष प्रकार की मणि बतलायी गयी है। इसके विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि यदि इसको अग्नि के सामने रख दिया जाय तो अग्नि की दाहकत्व-शक्ति समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त यह मणि चन्द्रिका से संयुक्त होकर जल-स्रवण करती है किन्तु उससे वियुक्त होने पर यह सूख जाती है। इस प्रकार की कोई मणि वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होती है किन्तु प्राचीनकाल के ग्रन्थों में इसका उल्लेख बहुधा पाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नक्षत्रों की तनुता एवं चन्द्रमा[1] का लोप हो जाने से नष्टतेज औषधियों[2] के लय से पूर्व में अनुनीयमान एवं अभी स्पष्टरूप से आविर्भूत न होने वाली, एवं क्षणमात्र के लिए उदयाचल के पृष्ठ भाग से अन्तर्निहित, सूर्य की प्रातःकालीन आभा आप लोगों की रक्षा करे ॥ ३७ ॥

सानौ सा नौदये नारुणितदलपुनर्यौवनानां वनाना-
मालीमालीढपूर्वा परिहृतकुहरोपान्तनिम्ना तनिम्ना ॥
भा वोऽभावोपशान्तिं दिशतु दिनपतेर्भासमाना समाना
राजी राजीवरेणोः समसमयमुदेतीव यस्या वयस्या ॥ ३८ ॥

सखी के समान विकसित पद्मराग की पंक्ति से युक्त, रक्तिम दलों के कारण पुनर्यौवन को धारण करने वाले वनों की पंक्तियों का संस्पर्श करने वाली एवं उदयाचल के शृङ्गदेश में अपनी सूक्ष्मता से रन्ध्र भाग की अगाधता को दूर करने वाली, दिनपति की भासित होने वाली दीप्ति आप लोगों के अभाव का उपशमन करे ॥ ३८ ॥

---

१. श्लोक में चन्द्रमा के लिए 'एणाङ्क' शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्भवतः यह शब्द चन्द्रमण्डल में बने हुए काले धब्बे की ओर संकेत करता है क्योंकि यह धब्बा हिरन के समान आकार वाले एक चतुष्पदीय पशु की आकृति का है तथा पूर्णचन्द्र में स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रमा के लिए इस शब्द का प्रयोग महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है। अतएव सम्भव है कि यह नाम बाद में पड़ा हो। चन्द्रमा के लिए 'शशाङ्क' शब्द का भी प्रयोग इसी प्रकार है।

२. चन्द्रमा को प्रायः "ओषधीनां पतिः" अथवा वनस्पतियों का स्वामी कहा जाता है। इस प्रकार की उक्ति में क्या तथ्य है यह नहीं कहा जा सकता है, किन्तु पुष्पित होने वाले कुछ वृक्ष एवं लताएँ भी चन्द्रास्त के साथ ही संकुचित हो जाती हैं। संभवतः यही कारण है जिससे चन्द्रमा को वनस्पतियों का स्वामी कहा जाता है। इस शब्द का प्रयोग साहित्य में प्रायः मिलता है तथा महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में भी चन्द्रमा को ओषधिपति कहा है—

'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्। (अभिज्ञान-शाकुन्तलम् ४.२)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उज्जृम्भाम्भोरुहाणां प्रभवति पयसां या श्रिये नोष्णतायै
पुष्णात्यालोकमात्रं न तु दिशति दृशां दृश्यमाना विघातम्।
पूर्वाद्रेरेव पूर्वं दिवमनु च पुनः पावनी दिङ्मुखाना-
मेनांस्यैनी विभासौ नुदतु नुतिपदैकास्पदं प्राक्तनी वः ॥३९॥

विकसित कमलों से युक्त जल को व्यथा नहीं अपितु शोभा प्रदान करने वाली, सर्वप्रथम उदयगिरि को पवित्र कर द्यौ एवं दिशाओं को पवित्र करने वाली एवं स्तुतिपदों में एकमात्र प्रतिष्ठित होने वाली, सूर्य की प्रातःकालीन दीप्ति आपके पापों का विनाश करे ॥ ३९ ॥

वाचां वाचस्पतेरप्यचलभिदुचिताचार्यकाणां प्रपञ्चै-
र्वैरञ्चानां तथोच्चारितचतुरऋचां चाननानां चतुर्णाम् ॥
उच्येतार्चासु वाच्यच्युतिशुचि चरितं यस्य नोच्चैर्विविच्य
प्राच्यं वर्चश्चकासच्चिरमुपचिनुतात्तस्य चण्डार्चिषो वः ॥४०॥

सूर्य का प्राची दिशा में उदित होने वाला देदीप्यमान तेज चिरकाल तक आप लोगों की समृद्धि करे, जिसके निन्दारहित पवित्र चरित्र की स्तुति का भलीभाँति निर्वचन करने में इन्द्र के लिए योग्य उपदेष्टा बनाने वाली बृहस्पति की वाणी का प्रपञ्च एवं सुन्दर ऋचाओं का उच्चारण करने वाले ब्रह्मा के चारों मुख की वाणी का प्रपञ्च असमर्थ है ॥ ४० ॥

मूर्ध्न्यद्रेर्धातुरागस्तरुषु किसलयो विद्रुमौघः समुद्रे
दिग्मातङ्गोत्तमाङ्गेष्वभिनवनिहितः सान्द्रसिन्दूररेणुः ॥
सीम्नि व्योम्नश्च हेम्नः सुरशिखरिभुवो जायते यः प्रकाशः
शोणिम्नासौ खरांशोरुषसि दिशतु वः शर्म शोभैकदेशः ॥४१॥

अपनी लालिमा के कारण पर्वत-शिखर पर गेरुक धातु, वृक्षों पर किसलय, समुद्र में मूँगों का समूह एवं दिग्गजों के मस्तक पर नवीन अर्चित बहल सिन्दूर-रज की भाँति सुशोभित एवं आकाश की सीमा पर सुमेरु पर्वत से उत्पन्न सुवर्ण-कान्ति को धारण करने वाली,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूर्य की शोभा का एकमात्र स्थान रक्त आभा आप लोगों को सुख प्रदान करे ॥ ४१ ॥

अस्ताद्रीशोत्तमाङ्गे श्रितशशिनि तमःकालकूटे निपीते
याति व्यक्तिं पुरस्तादरुणकिसलये प्रत्युषःपारिजाते ॥
उद्यन्त्यारक्तपीताम्बरविशदतरोद्वीक्षिता तीक्ष्णभानो-
र्लक्ष्मीर्लक्ष्मीरिवास्तु स्फुटकमलपुटापाश्रया श्रेयसे वः ॥४२॥

विकसित[1] कमलदल पर आसीन लक्ष्मी[2] की भाँति, सूर्य की वह कान्ति आप लोगों के अभ्युदय के लिए हो जो अस्ताचलरूपी शिव के शिरोभाग पर चन्द्रमा के आश्रित होने पर एवं अन्धकाररूपी [3]विष-पान के पश्चात् तथा पूर्व दिशा में अरुण किसलयों वाले, प्रत्युषः पारिजात के प्रकट होने पर, सन्ध्या से ईषत् रक्त तथा पीत वर्ण के नभ में स्फुट रूप से देखी जाती है ॥ ४२ ॥

---

१. मयूर श्लेष-विन्यास में अत्यन्त निपुण हैं। प्रस्तुत श्लोक में सूर्य की श्री (प्रभा) का वर्णन करते समय उन्होंने श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से लक्ष्मी का भी वर्णन कर दिया है। लक्ष्मी पक्ष में श्लोक का अर्थ इस प्रकार होगा—

'जो समुद्र से निकलते ही अपने प्रिय विष्णु के द्वारा स्पृहा से देखी गई, जिनके उत्थान के पूर्व ही चन्द्रमा शिव के मस्तक को अलंकृत कर चुका था तथा अन्धकार के समान तीक्ष्ण गरल का पान भी शिव द्वारा हो चुका था, पारिजात वृक्ष अपने किसलयों सहित दृष्टिगोचर हो चुका था, ऐसी विकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी की भाँति, सूर्य की, श्री आप लोगों के अभ्युदय के लिए हो।'

२. विकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी प्रसिद्ध समुद्र-मंथन के उपरान्त प्रकट हुई थीं वह समुद्र-मन्थन से उत्पन्न सोलह रत्नों में से एक थी। विष्णु पुराण (१. ९) में इसका प्रसंग आया है।

३. कालकूट अथवा विष भी समुद्र-मंथन से ही उत्पन्न हुआ था। इसकी विषाक्त ज्वाला देवताओं को मूर्च्छित कर रही थी। तभी शिव ने देवताओं की रक्षा के लिए इस विष का पान कर लिया था। महाभारत (१. १८. ४१–४३) में शिव के गरलपान का उल्लेख मिलता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नोदन्वाञ्जन्मभूमिर्न तदुदरभुवो बान्धवाः कौस्तुभाद्या
यस्याः पद्मं न पाणौ न च नरकरिपूरःस्थली वासवेश्म ॥
तेजोरूपापरैव त्रिषु भुवनतलेष्वादधाना व्यवस्थां
सा श्रीः श्रेयांसि दिश्यादशिशिरमहसो मण्डलाग्रोद्गता वः॥४३॥

सूर्य-मण्डल से समुद्भूत वह प्रभा आप लोगों को अभ्युदय प्रदान करे जो तीनों लोकों में व्यवस्था करती हुई,[1] प्रसिद्ध श्री से विलक्षण, तेजस्वरूप श्री है, समुद्र जिसकी जन्मभूमि नहीं है, समुद्र के गर्भ से उत्पन्न कौस्तुभ आदि रत्न जिसके बान्धव नहीं हैं, जिसके हाथ में कमल भी नहीं है तथा नरक[2] के शत्रु (विष्णु) का वक्षःस्थल जिसका निवास स्थान भी नहीं है ॥ ४३ ॥

रक्षन्त्वक्षुण्णहेमोपलपटलमलं लाघवादुत्पतन्तः
पातङ्गाः पङ्गवङ्गाजितपवनजवा वाजिनस्ते जगन्ति ॥
येषां वीतान्यचिह्नोन्नयमपि वहतां मार्गमाख्याति मेरा-
वुद्यन्नुद्दामदीप्तिद्युमणिमणिशिलावेदिकाजातवेदाः ॥ ४४ ॥

इति द्युतिवर्णनम् ।

सूर्य के वे अश्व भुवनों की रक्षा करें जो लाघव से उत्पतन करते हुए अपने (खुरपुटों) से सुमेरु-पर्वत के पटल को चूर्णित नहीं करते हैं,

---

१. सूर्य का तेज (श्री) तीनों भुवनों में व्याप्त है किन्तु लक्ष्मी (धन की देवी) सर्वथा चञ्चल एवं अस्थायी हैं। सूर्य की श्री समुद्र से उत्पन्न नहीं है। सूर्य-प्रभा का निवास-स्थान भगवान विष्णु का वक्षःस्थल नहीं है किन्तु लक्ष्मी का निवास-स्थान विष्णु का वक्षःस्थल ही है। लक्ष्मी से सूर्य-कान्ति की यही विलक्षणता है।

२. नरकासुर का वध कृष्ण ने किया था और कृष्ण को भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है अतएव विष्णु को ही यहाँ नरकासुर का शत्रु कहा गया है। भागवत पुराण में नरकासुर-वध का उल्लेख मिलता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अरुण की अवहेलना करने वाले पवन-वेग को तिरस्कृत करते हैं[1] एवं मेरु से जाते समय अन्य चिह्नों से रहित जिनके मार्ग को प्रचण्ड दीप्ति वाली सूर्यकान्तमणि की वेदिकाओं की अग्नि[2] बताती है ॥ ४४ ॥

प्लुष्टाः पृष्ठेंऽशुपातैरतिनिकटतया दत्तदाहातिरेकै-
रेकाहाक्रान्तकृत्स्नत्रिदिवपथपृथुश्वासशोषाः श्रमेण ॥
तीव्रोदन्यास्त्वरन्तामहितविहतये सप्तयः सप्तसप्ते-
रभ्याशाकाशगङ्गाजलसरलगलावाङ्नताग्राननना वः ॥ ४५ ॥

अत्यन्त निकट होने के कारण अधिक दाहक किरणों से दग्ध पृष्ठ-भाग वाले, श्रमपूर्वक एक ही दिन में सम्पूर्ण द्युलोक के मार्ग को लाँघने के कारण प्रचुर श्वास से शुष्क एवं तीव्र तृष्णा-से समीप में स्थित आकाश-गंगा के जल में सोधी ग्रीवावाले मुख के अग्रभाग को झुकाने वाले, सात अश्वों वाले सूर्य के, अश्व आप लोगों के अहित के विनाश में शीघ्रता करें ॥ ४५ ॥

सत्वान्यान्पार्श्वतोऽश्वान् स्फटिकतटदृषद्दृष्टदेहा द्रवन्ती
व्यस्तेऽहन्यस्तसंध्येयमिति मृदुपदा पद्मरागोपलेषु ॥
सा दश्यादश्यमूर्तिर्मरकतकटके क्लिष्टसूता सुमेरो-
र्मूर्धन्यावृत्तिलब्धध्रुवगतिरवतु ब्रह्मवाहावलिर्वः ॥ ४६ ॥

---

१. इस सम्पूर्ण पाद का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जो चरण-रहित वायु की अवहेलना करते हैं अर्थात् वायु तो चरणरहित है, उसका कितना वेग हो ही सकता है, इस प्रकार वायु-वेग का तिरस्कार करते हैं।

२. जातवेदस् (अग्नि) का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, इस विषय में महाभारत में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। महाभारत (२-३१-४२) में कहा गया है—वेदास्त्वदर्थं जाता वै जातवेदस् ततो हि असि 'अर्थात् हे अग्ने ! वेदों की रचना तुम्हारे ही लिए हुई थी। अतएव वास्तव में तुम्हीं वह हो जिसके लिए वेदों की रचना की गई थी।'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुमेरु पर्वत के शिरोभाग पर ध्रुवगति से चलनेवाली, स्फटिक मणियों में प्रतिबिम्ब को देखकर अपने पार्श्व में अन्य अश्वों की स्थिति को समझकर (उनके पीछे) दौड़ने वाली, पद्मराग मणियों पर दिवस के समाप्त हो जाने पर यह सन्ध्याकालीन कान्ति है। ऐसा मानकर मन्दगति से चलने वाली एवं हरित वर्ण की मरकतमणि की मेखला पर अदृश्य [1]मूर्तिवाली, सारथि को कदर्थित करने वाले सूर्याश्वों की, पंक्ति आप लोगों की रक्षा करे ॥ ४६ ॥

हेलालोलं वहन्ती विषधरदमनस्याग्रजेनावकृष्टा
स्वर्वाहिन्या सुदूरं जनितजवजया स्यन्दनस्य स्यदेन ॥
निर्व्याजं तायमाने हरितिमनि निजे स्फीतफेनाहितश्री-
रश्रेयांस्यश्वपङ्क्तिः शमयतु यमुनेवापरा तापनी वः ॥ ४७ ॥

निर्व्याज अपने हरित गुण के विस्तार को प्राप्त होने पर अपनी उपचित फेन-शोभा से युक्त, स्यन्दन के वेग से व्योम-गंगा की गति को पूर्णतया तिरस्कृत करने वाली एवं सर्पों का दमन करने वाले गरुड़[2] के

१. मरकत-मणि भी हरे रंग की होती है और सूर्याश्वों का वर्ण भी हरा माना गया है। ऐसी अवस्थाओं में वर्ण-साम्य के कारण मरकत-मणि में इनका प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता है।

२. गरुड़ को सर्पों का दमन अथवा भक्षण करने वाला कहा जाता है। सर्पों से इनका वैर किस प्रकार हुआ, इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार मिलती है—एक बार इन्द्राश्व उच्चैःश्रवा की पुच्छ के रंग के विषय में अरुण तथा गरुड़ की माता विनता और इनकी सपत्नी सर्पों की माता कद्रू में परस्पर मतभेद हो गया। विनता का कथन था कि अश्व की पुच्छ श्वेत है और वास्तविकता भी यही थी किन्तु इसके विपरीत कद्रू का कथन था कि पुच्छ का रंग काला है। दोनों में परस्पर शर्त लग गई जिसके अनुसार दोनों में से जिसकी हार होगी वह दूसरे की दासी बन जायगी। तब माता की आज्ञा से सर्प उच्चैःश्रवा की पुच्छ में लग गए और इस प्रकार पुच्छ काली प्रतीत होने लगी और अन्ततोगत्वा कद्रू की विजय हुई। विनता पराजित होकर सर्पों की दासी बन गई। सर्पों ने गरुड़ से इस बात की प्रतिज्ञा की यदि वह अमरत्व-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के अग्रज अरुण से अवकृष्ट होकर अनायास चांचल्य का वहन करने वाली, सूर्य की, दूसरी यमुना की भाँति अश्वपंक्ति आप लोगों के पाप को विनष्ट करे ॥ ४७ ॥

अथवा

सर्प दमन करने वाले [1]कृष्ण के अग्रज [2]बलराम के द्वारा वृन्दावन

प्रदान करने वाले चन्द्रमा से उत्पन्न अमृत लाकर दे सकें तो सर्प विनता को दासत्व से मुक्त कर देंगे। गरुड़ अनेक यातनाओं को सहने के पश्चात् अमृत लेकर लौट रहे थे कि मार्ग में उन्हें पहले भगवान् विष्णु और फिर इन्द्र मिले तथा उनको ऐसा करने से रोका। विष्णु ने गरुड़ को अमरत्व प्रदान किया और बदले में गरुड़ ने विष्णु का वाहन बनना स्वीकार कर लिया (महाभारत १.३३.१६-१७) तथा इन्द्र ने गरुड़ से इस बात की शपथ ले ली कि वह किसी को मूल्यवान् अमृत न पीने देंगे। इसके बदले में इन्द्र ने उन्हें इच्छानुसार सर्प-भक्षण की स्वतंत्रता प्रदान किया। (महाभारत १.३४.१३-१४) तदनन्तर यह योजना बनायी गई कि गरुड़ सर्पों को अमृत दे देंगे जिससे विनता दासीत्व से मुक्त हो जायेंगी किन्तु इससे पूर्व कि सर्प इसका पान कर सकें, इन्द्र इसको छीन लेंगे। गरुड़ ने सर्पों को अमृत दे दिया तथा काद्रवेय सर्पों ने विनता को मुक्त करने की घोषणा कर दी। तदनन्तर जिस समय समस्त सर्प सोमपान करने के लिए विधिपूर्वक अपने शरीरादि को शुद्ध कर रहे थे, इन्द्र अदृश्य होकर अमृत को उठा ले गए। काद्रवेयों ने उस कुश को चाट लिया जिस पर अमृत रखा हुआ था और उनकी जिह्वाएँ फट गईं। तभी से सर्पों का गरुड़ से वैर हो गया।

१. भगवान् कृष्ण को भी सर्पों का दमन करने वाला कहा जाता है, क्योंकि इन्होंने कालिय नामक नाग पर विजय पाई थी। यह सर्प यमुना नदी में रहता था। इसने अपने विष से नदी के जल को दूषित कर दिया था जिससे तटस्थ सभी वृक्ष सूख गए थे। उसके विष की असहनीय उष्णता से पक्षी भी मर जाते थे। कृष्ण जी अपने मित्रों के साथ कन्दुक खेल रहे थे। अचानक वह यमुना की धारा में जा गिरा। कृष्ण यमुना में ग्वालों के रोकने पर भी कूद पड़े तथा उस सर्प को युद्ध में पराजित कर, जब उसकी जीवन-लीला समाप्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में अवकृष्ट की जाने पर क्रीड़ा के साथ चंचल गति से गमन करने वाली, प्रवाह-वेग से गंगा-वेग को तिरस्कृत करने वाली एवं अपनी हरीतिमा पर फेन की शोभा धारण करने वाली यमुना की भाँति सूर्याश्वों की पंक्ति आपके पापों का विनाश करे।

सार्गोपान्ते सुमेरोर्नुवति कृतनतौ नाकधाम्नां निकाये
वीक्ष्य व्रीडानतानां प्रतिकुहरमुखं किंनरीणां मुखानि ॥
सूतेऽसूयत्यपीषज्जडगति वहतां कंधरार्धैर्वलद्भि-
र्वाहानां व्यस्यताद्वः समसमसमहरेर्हेषितं कल्मषाणि ॥४८॥

करने जा ही रहे थे, नागिनों की प्रार्थना करने पर उन्होंने उसको छोड़ दिया। कालिय यद्यपि मृत्यु से बच गया था किन्तु उसे उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा। यह कथा विष्णुपुराण (५.७) में मिलती है।

भागवतपुराण में कृष्ण के सर्प-दमन की एक दूसरी कथा मिलती है। इसके अनुसार मथुरा के राजा कंस ने एक राक्षस को कृष्ण की हत्या करने के लिए भेजा था क्योंकि आकाशवाणी द्वारा कंस को ज्ञात हो चुका था कि कृष्ण ही उसकी मृत्यु के कारण होंगे। यह राक्षस एक सर्प का वेष धारण कर अकस्मात् प्रकट हुआ तथा कृष्ण और उनके मित्रों को निगल गया। कृष्ण ने अन्दर ही अपने शरीर का विस्तार किया और उसके पेट को फाड़कर बाहर निकल आए।

२. कृष्ण के बड़े भाई बलराम थे। बलराम द्वारा यमुना के अवकर्षण की कथा इस प्रकार है कि एकबार बलराम ने उन्मत्त होकर यमुना से अपने पास आने के लिए कहा, जिससे वे स्नान करके अपनी उन्मत्तता को नष्ट कर सकें किन्तु यमुना नदी द्वारा उनकी आज्ञा का पालन न होने पर उन्होंने यमुना के तट से अपने हल के द्वारा एक नाली खोदी, जिससे नदी का जल उस नाली में आने लगा और वे तब तक इसी प्रकार खोदते रहे जब तक यमुना ने मानवरूप धारण कर उनसे क्षमा नहीं माँगी। यह कथा विष्णुपुराण में (५.२५) में उपलब्ध होती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुमेरु पर्वत के मार्ग के समीप एकत्रित देव-वृन्दों को प्रणाम तथा स्तुति करने पर कन्दराओं के द्वार पर नम्र अश्वमुखो किन्नरियों के मुख को देखकर ग्रीवा को कुछ टेढ़ी करके मन्दगति से चलने वाले, (एवम्) इस प्रकार के कार्य से सारथि अरुण को कुपित करने वाले, सूर्य के, अश्वों की हिनहिनाहट आप लोगों के पापों का विनाश करे ॥ ४८ ॥

धुन्वन्तो नीरदालीर्निजरुचिहरिताः पार्श्वयोः पक्षतुल्या-
स्तालूत्तानैः खलीनैः खचितमुखरुचश्च्योतता लोहितेन ॥
उड्डीयेव व्रजन्तो वियति गतिवशादर्कवाहाः क्रियासुः
क्षेमं हेमाद्रिहृद्यद्रुमशिखरशिरःश्रेणिशाखाशुका वः ॥ ४९ ॥

स्वर्णिम सुमेरुपर्वतरूपी वृक्ष की शृंगपंक्तिरूपी शाखाओं पर शुक की भाँति प्रतीत होने वाले, दोनों ओर पार्श्व में अपनी कान्ति से रहित वर्ण वाले पक्ष (पंख) के तुल्य मेघों को कम्पित करने वाले, तालु में कर्णित लगाम के कारण रक्तस्राव होने से रचित मुख शोभा वाले एवं अपनी तीव्र गति के कारण आकाश में उड़ते हुए की भाँति चलने वाले, सूर्य के अश्व आपको प्रसन्न करें ॥ ४९ ॥

प्रातःशैलाग्ररङ्गे रजनिजवनिकापायसंलक्ष्यलक्ष्मी-
र्विक्षिप्यापूर्वपुष्पाञ्जलिमुडुनिकरं सूत्रधारायमाणः ॥
यामेष्वङ्केष्विवाह्नः कृतरुचिषु चतुर्ष्वेव जातप्रतिष्ठा-
मव्यात्प्रस्तावयन्वो जगदटनमहानाटिकां सूर्यसूतः ॥५०॥

उदयाचल के उपरिभाग (रूपी) रंगमंच पर रात्रि (रूपी) जवनिका के हट जाने से प्रकटित शोभा वाले एवं सूत्रधार के समान आचरण करते हुए नक्षत्ररूपी अपूर्व पुष्पाञ्जलि को विकीर्ण करने वाले एवं सूर्य के संसारभ्रमण विषयक महान् नाटिका की प्रस्तावना करने वाले, सूर्य के, सारथि[1] आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५० ॥

---

१. प्रस्तुत श्लोक में सूर्योदय की तुलना महान् नाटिका से की गई है। इस नाटिका के सूत्रधार अरुण हैं जो रात्रिरूपी जवनिका के उठते ही रंगमञ्च पर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आक्रान्त्या वाह्यमानं पशुमिव हरिणा वाहकोऽग्र्यो हरीणां
भ्राम्यन्तं पक्षपाताज्जगति समरुचिः सर्वकर्मैकसाक्षी ॥
शत्रुं नेत्रश्रुतीनामवजयति वयोज्येष्ठभावे समेऽपि
स्थाम्नां धाम्नां निधिर्यः स भवदघनुदे नूतनः स्तादनूरुः ॥५१॥

स्थायो तेज के निधि नूतन अनूरु (अरुण) आप लोगों की रक्षा करें जो साधारण पशु की भाँति एक ही हरि (विष्णु) के द्वारा पराक्रम के कारण वाहन बनाए गए गरुड़ से हरि (अश्वों) के प्रधान वाहक होने के कारण श्रेष्ठ हैं तथा सभी कार्यों के एकमात्र साक्षी हैं, समस्त संसार के प्रति (लालिमा अथवा प्रेम) प्रकट करने वाले हैं, अतएव पक्षपात से (पंखों को कँपाकर या हिलाकर) संसार में भ्रमण करने वाले सर्पों के शत्रु (गरुड़) से श्रेष्ठ हैं, यद्यपि पक्षियों में मुख्य (गरुड़) तथा आयु में ज्येष्ठ (अरुण) होने के गुण समान ही हैं ॥ ५१ ॥

दत्तार्घैर्दूरनम्रैर्वियति विनयतो वीक्षितः सिद्धसार्थैः
सानाथ्यं सारथिर्वः स दशशतरुचेः सातिरेकं करोतु ॥
आपीय प्रातरेव प्रततहिमपयःस्यन्दिनीरिन्दुभासो
यः काष्ठादीपनोऽग्रे जडित इव भृशं सेवते पृष्ठतोऽर्कम् ॥५२॥

अत्यन्त नम्र होकर अर्घ देनेवाले सिद्ध समूह से विनयपूर्वक देखे जानेवाले, प्रातःकाल ही निरन्तर हिमजल की वर्षा करनेवाली चन्द्र-किरणों का पान कर शीत-पीड़ित मनुष्य की भाँति [1]पृष्ठभाग से तो सूर्य की आराधना करनेवाले एवं सामने काष्ठ से प्रदीप्त अग्नि के समान

प्रवेश करते हैं तथा नाटक के सूत्रधार की भाँति नक्षत्ररूपी अपूर्व पुष्पाञ्जलि विकीर्ण करते हैं। नाटिका के चार अंक दिवस के चार प्रहर हैं तथा सूर्य का संसारभ्रमण ही इसकी कथावस्तु है। यह श्लोक 'सूर्यशतक' में उपनिबद्ध उपमालंकार का सर्वोत्तम उदाहरण है।

१. 'पृष्ठतोऽर्कम् निषेवेत जठरेण हुताशनम्' अर्थात् पृष्ठभाग से तो अर्क की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिग्-उद्योत का सेवन करनेवाले, सूर्य के, सारथि आप लोगों को अत्यधिक सनाथ करें ॥ ५२ ॥

मुञ्चन् रश्मीन्दिनादौ दिनगमसमये संहरंश्च स्वतन्त्र-
स्तोत्रप्रख्यातवीर्योऽविरतहरिपदाक्रान्तिबद्धाभियोगः ॥
कालोत्कर्षाल्लघुत्वं प्रसभमधिपतौ योजयन्यो द्विजानां
सेवाप्रीतेन पूष्णात्मसम इव कृतस्त्रायतां सोऽरुणो वः ॥५३॥

सेवा से प्रसन्न होकर पूषन् के द्वारा अपने समान बना लिए जाने वाले, अश्वों की रश्मि ढीली कर देने तथा संहृत कर लेने में स्वतंत्र, निरन्तर अश्वों के पाद संचालन में प्रयत्नशील एवं पक्षियों के स्वामी को आयु की अधिकता से लघु बना देनेवाले अरुण[1] आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५३ ॥

आराधना अथवा सेवन करना चाहिए और सम्मुख होकर अग्नि को आराधना करनी चाहिए। उस अग्नि की खाद्य सामग्री नैवेद्य है। सम्भवतः अग्नि से यहाँ यागादि के लिए प्रज्वलित अग्नि की ओर संकेत किया गया है। सूर्य की आराधना करते हुए मनुष्य के चित्र के लिए देखिए—

Epics, Myths and legends of India—Thomas.

१. इस श्लोक में सारथि अरुण की सूर्य से समानता बताई गई है तथा दोनों के स्वतन्त्र क्षेत्र बताये गये हैं। इस श्लोक में शब्द-श्लेष है तथा सूर्य और अरुण दोनों की शक्तियों का वर्णन है। श्लेष से सूर्य-पक्ष में अर्थ इस प्रकार होगा—

जो पूषन् दिवस के प्रारम्भ में अपनी रश्मियों को विस्तृत करने तथा सायंकाल संहृत करने में स्वतंत्र हैं, जो स्तुतिपद्यों में अपनी शक्ति के लिए विख्यात हैं, आकाश पर आक्रमण करने के लिए उद्योग करते रहते हैं तथा कालोत्कर्ष से हठात् ब्राह्मणों के अधिपति (चन्द्रमा) को लघु बना देते हैं अर्थात् अदृश्यता को प्राप्त करा देते हैं, (ऐसे सूर्य ने) जिन्हें सेवा से प्रसन्न होकर अपने समान बना लिया है, वह अरुण आप लोगों की रक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शातः श्यामालतायाः परशुरिव तमोऽरण्यवह्लेरिवार्चिः
प्राच्येवाग्रे ग्रहीतुं ग्रहकुमुदवनं प्रागुदस्तोऽग्रहस्तः ।।
ऐक्यं भिन्दन्द्युभूम्योरवधिरिव विधातेव विश्वप्रबोधं
वाहानां वो विनेता व्यपनयतु विपन्नाम धामाधिपस्य ।।५४।।

रात्रिरूपी अंगूरलता को छिन्न करने के लिए तीक्ष्ण कुठार की भाँति अथवा अन्धकाररूपी अरण्य में प्रदीप्त अग्नि-ज्वाला की भाँति अथवा कुमुदवनरूपी प्राची दिशा के सम्मुख स्थित नक्षत्र समूह को ग्रहण करने के लिए हस्ताग्र को उठाए हुए अथवा आकाश और पृथ्वी के ऐक्य को विनाशित करनेवाली सीमान्त रेखा के समान अथवा संसार का प्रबोध करनेवाले ब्रह्मा की भाँति, सूर्याश्वों के, सारथि अरुण आप लोगों की समस्त आपदाओं का विनाश करें ।। ५४ ।।

पौरस्त्यस्तोयदर्तोः पवन इव पतत्पावकस्येव धूमो
विश्वस्येवादिसर्गः प्रणव इव परं पावनो वेदराशेः ।।
संध्यानृत्योत्सवेच्छोरिव मदनरिपोर्नन्दिनान्दीनिनादः
सौरस्याग्रे सुखं वो वितरतु विनतानन्दनः स्यन्दनो वः ।।५५।।

वर्षाकाल में पूर्वी पवन की भाँति, अरणी से निकलने वाले धूम के समान, विश्व के आदि सर्ग पंचभूत की भाँति, वेदों को परम पवित्र करनेवाले ॐ[1] की भाँति, सन्ध्या के समय नृत्य की अभिलाषा करने

---

१. अरुण ॐ के समान हैं, क्योंकि अरुण सूर्य-रथ के अग्रभाग पर स्थित रहते हैं तथा प्रणव वेदों के अग्रभाग में स्थित हैं, क्योंकि वेदमंत्रों का उच्चारण करते समय सर्वप्रथम प्रणव का उच्चारण किया जाता है 'प्रणवः प्राक् प्रयुञ्जीत् ।' अरुण यागादि कार्य के लिए उद्यत मनुष्य को पवित्र करते हैं, क्योंकि अरुणोदय (दिवसोदय) के बिना यागादि कार्य का कोई महत्त्व नहीं होता है तथा प्रणव वेदमंत्रों का उच्चारण करनेवाले मनुष्य को पवित्र करते हैं, क्योंकि बिना प्रणव का उच्चारण किए अन्य मन्त्रों के उच्चारण का कोई महत्त्व नहीं होता है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले [1]मदन-रिपु के आगे नन्दी आदि गणों के द्वारा किये गये मुरज-नाद के समान, सूर्य-रथ के, अग्रभाग पर स्थित विनता को आनन्दित करने वाले अरुण आप लोगों को सुख प्रदान करें ॥ ५५ ॥

पर्याप्तं तप्तचामीकरकटकतटे श्लिष्टशीतेतरांशा-
वासीदत्स्यन्दनाश्वानुकृतिमरकते पद्मरागायमाणः ॥
यः सोत्कर्षां विभूषां कुरुत इव कुलक्ष्माभृदीशस्य मेरो-
रेनांस्यह्नाय दूरं गमयतु स गुरुः काद्रवेयद्विषो वः ॥५६॥

---

१. मदन के शत्रु शिव हैं। एकबार कामदेव ने भगवान् शिव पर अपना प्रेम-बाण फेंका। प्रेम से चञ्चल हृदय वाले भगवान् शिव अपनी मृत पत्नी सती का नाम पुकारते हुए इतस्ततः घूमने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर उनकी भेंट काम से हुई तथा शिव ने यह जानकर कि यही इनकी मानसिक व्यथा का कारण है, क्रुद्ध होकर अपने तृतीय नेत्र से उसको तत्काल ही भस्म कर दिया। यह कथा वामनपुराण में उपलब्ध होती है।

अन्य पुराणों में इससे भिन्न किन्तु अधिक प्रचलित कथा उपलब्ध होती है। इसके अनुसार तारक नामक असुर से भयभीत देवताओं को यह ज्ञात हुआ कि यदि भगवान् शिव के कोई पुत्र हो तो वही उनको असुरों के भय से मुक्त कर सकता है। शिव अपनी पत्नी सती की मृत्यु से अधिक दुःखी थे। अतएव उन्हें प्रेम-पाश में फँसाना बड़ा कठिन कार्य था। अतएव देवताओं ने कामदेव से शिव पर प्रेम-बाण फेंकने को कहा। उस समय भगवान् शिव समाधिस्थ थे तथा देवी पार्वती उनको प्रेमभाव से देख रही थीं। देवताओं ने सोचा कि ऐसा करने से शिव पार्वती में अनुरक्त हो जायेंगे। कामदेव इस कार्य को करने के लिए उद्यत हो गये। उसने शिव पर प्रेम-बाण का प्रहार किया। भगवान् शिव का धैर्य कुछ समय के लिए तो नष्ट हो गया किन्तु कुछ समय के पश्चात् समाधिभंग होने से क्रुद्ध हुए शिव ने अपने तृतीय नेत्र से काम को भस्म कर दिया। यह कथा विष्णुपुराण तथा कालिदासकृत कुमारसंभव के तृतीय सर्ग में मिलती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर्वतों के ईश मेरु पर्वत की शोभा को अत्यन्त उत्कृष्ट आभूषण की भाँति बना देनेवाले, सूर्य-किरणों से संश्लिष्ट मेरु को पिघलते हुए सुवर्ण की उपत्यका पर पद्मरागमणि के सदृश प्रतीत होनेवाले, सर्पों के शत्रु गरुड़ के ज्येष्ठ भ्राता अरुण आप लोगों के पाप को शीघ्रता से नष्ट करें जिनके चलते हुए रथाश्वों का प्रतिबिम्ब मरकतमणि के तुल्य है ।।५६।।

नीत्वाश्वान्सप्त कक्षा इव नियमवशं वेत्रकल्पप्रतोद-
स्तूर्णं ध्वान्तस्य राशावितरजन इवोत्सारिते दूरभाजि ।।
पूर्वं प्रष्ठो रथस्य क्षितिभृदधिपतीन्दर्शयंस्त्रायतां व-
स्त्रैलोक्यास्थानदानोद्यतदिवसपतेः प्राक्प्रतीहारपालः ।।५७।।

त्रैलोक्य सभामण्डल में दान देने के लिए तत्पर दिवस-पति के मुख्य प्रतिहारराज, सूर्य-रथ के एक अनुभवी प्रबन्धकर्ता की भाँति पर्वतों के अधिपति मेरु आदि का ध्यान रखने वाले, (द्वारपाल की भाँति) प्रतोद धारण करने वाले एवं सात कक्षों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले (द्वारपाल की भाँति) सात अश्वों पर नियंत्रित प्रतिबन्ध लगाने वाले अरुण आपकी रक्षा करें ।। ५७ ।।

वज्रिञ्ज्ञातं विकासीक्षणकमलवनं भासि नाभासि वह्ने !
तातं नत्वाश्वपार्श्वान्नय यम ! महिषं राक्षसा वीक्षिताः स्थ ।।
सप्तीन्सिञ्च प्रचेतः ! पवन ! भज जवं वित्तपावेदितस्त्वं
वन्दे शर्वेति जल्पन्प्रतिदिशमधिपान्पातु पूष्णोऽग्रणीर्वः ।।५८।।

'हे वज्रिन् ! आपका नेत्ररूपी कमलवन विकसित हो गया है, हे वह्ने ! तुम अपनी सम्पूर्ण शोभा से प्रकाशित मत होओ, हे यम ! पिता सूर्य को प्रणाम करके अपने [1]महिष को अश्वों के पास से ले जाओ, हे

१. महिष यम का वाहन है। महिष तथा अश्व में स्वाभाविक वैर होता है। इसीलिए अरुण ने अश्वों के समीप से महिष को हटाने का आदेश दिया है। 'मुहूर्तचिन्तामणि' ग्रन्थ में पशुओं के स्वाभाविक वैर का उल्लेख इस प्रकार आया है—

"गोव्याघ्रगजसिंहमश्वमहिषं श्वैणं च बभ्रूरगे' अर्थात् गाय तथा व्याघ्र, गज तथा सिंह, अश्व तथा महिष आदि में स्वाभाविक वैर है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राक्षसों ! तुम लोगों को स्वामी ने देख लिया है, हे प्रचेता ! अश्वों को सिक्त करो, हे पवन ! अपना वेग धारण करो, हे कुबेर ! तुम्हारे लिए हमने निवेदन कर दिया है, हे शिव ! तुम्हारी वन्दना करता हूँ । इस प्रकार प्रतिदिशाओं के अधिपों को आदेश देते हुए, पूषन् के, अग्रणी अरुण आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५८ ॥

पाशानाशान्तपालादरुण वरुणतो मा ग्रहीः प्रग्रहार्थं
तृष्णां कृष्णस्य चक्रे जहिहि नहि रथो याति मे नैकचक्रः ॥
योक्तुं युग्यं किमुच्चैःश्रवसमभिलषस्यष्टमं वृत्रशत्रो-
स्त्यक्तान्यापेक्षविश्वोपकृतिरिति रविः शास्ति यं सोऽवताद्वः ॥५९॥

'हे अरुण ! पश्चिम दिशा के पालक वरुण से बागडोर बनाने के लिए पाशों[1] को मत लो, मेरा रथ केवल एक चक्र से चलता है अतएव कृष्ण के चक्र की तृष्णा त्याग दो तथा आठ अश्वों को जोतने के लिए वृत्र-शत्रु इन्द्र के उच्चैःश्रवा को लेने की इच्छा क्यों करते हो ?' अन्य दिग्पालों से सहायता की आकांक्षा न रखने वाले रवि के द्वारा उपरोक्त प्रकार से शिक्षा दिये जाते हुए अरुण आप लोगों की रक्षा करें ॥ ५९ ॥

नो मूर्च्छाच्छिन्नवाञ्छः श्रमविवशवपुर्नैव नाप्यास्यशोषी
पान्थः पथ्येतराणि क्षपयतु भवतां भास्वतोऽग्रेसरः सः ॥
यः संश्रित्य त्रिलोकीमटति पटुतरैस्ताप्यमानो मयूखै-
राराद्रामलेखामिव हरितमणिश्यामलामश्वपङ्क्तिम् ॥६०॥

---

१. वरुण का प्रधान अस्त्र पाश है जिसका वर्णन ऋग्वेद (१०.८५.२४) में भी आया है, जहाँ 'वरुणस्य पाशात्' कहा गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि वरुण द्वारा इसका प्रयोग पापियों तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिए होता है । मनुस्मृति (९. ३०८) से, 'वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते' अर्थात् 'जिस प्रकार एक पापी वरुण के पाशों से बँधा हुआ देखा जाता है' भी यही स्पष्ट होता है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(श्रान्त पथिक के) समीप के कुञ्जों में आश्रय लेने की तरह तीक्ष्ण किरणों से सन्तप्त होकर मरकतमणि के सदृश श्यामल अश्वपंक्ति का आश्रय लेने वाले, शरीरश्रम से मुख-शोष एवं विकलता (आदि विकारों से रहित), मोह के कारण इच्छारहित न होने वाले, पथिक की भाँति त्रिलोक का भ्रमण करने वाले एवं सूर्य के आगे चलने वाले अरुण आप लोगों के अहित का विनाश करें ॥ ६० ॥

सीदन्तोऽन्तर्निमज्जज्जडखुरमुसलाः सैकते नाकनद्याः
स्कन्दन्तः कन्दरालीः कनकशिखरिणो मेखलासु स्खलन्तः ॥
दूरं दूर्वास्थलोत्का मरकतदृषदि स्थास्नवो यत्र याताः
पूष्णोऽश्वाः पूरयंस्तैस्तदवतु जवनैर्हुंकृतेनाग्रगो वः ॥६१॥

मन्दाकिनी के वालुका तट में खुरों के धँस जाने से जड़ होने के कारण, सुवर्ण पर्वत के मध्यभाग में कन्दराओं को लाँघते समय ठोकर खा जाने के कारण तथा मरकत में दूर्वाप्रदेश (का भ्रम हो जाने से) के लिए उत्कण्ठित होने पर स्थित हो जाने वाले, द्रुतगामी अश्वों को (उनकी) इच्छा के विपरीत स्थानों की ओर अपनी वेगपूर्ण हुंकार से अग्रसर करने वाले, सूर्य के, अग्रगामी अरुण आप लोगों की रक्षा करें ॥ ६१ ॥

पीनोरःप्रेरिताभ्रैश्चरमखुरपुटाग्रस्थितैः प्रातरद्रा-
वादीर्घाङ्गैरुदस्तो हरिभिरपगतासङ्गनिःशब्दचक्रः ॥
उत्तानानूरुमूर्धावनतिहठभवद्विप्रतीपप्रणामः
प्राह्णे श्रेयो विधत्तां सवितुरवतरन्व्योमवीथीं रथो वः ॥६२॥

रथ-वेग के कारण उत्तान हुए एवं शिर के नत होने के कारण अरुण द्वारा विलोम स्तुत, (भूमि को) संगति से परे होने के कारण निःशब्द चक्र वाला, पीन वक्षस्थल से मेघों को भिन्न करने वाले एवं पीछे के खुर-पुट के अग्रभाग पर स्थित तथा विस्तृत शरीर वाले अश्वों द्वारा मेरु-पर्वत पर प्रातःकाल खींचा जाने वाला एवं प्रातःकाल व्योम मार्ग में उतरता हुआ सवितृ-रथ आप लोगों का कल्याण करे ॥ ६२ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ध्वान्तौघध्वंसदीक्षाविधिपटु वहता प्राक्सहस्रं कराणा-
मर्यम्णा यो गरिम्णः पदमतुलमुपानीयताध्यासनेन ॥
स श्रान्तानां नितान्तं भरमिव मरुतामक्षमाणां विसोढुं
स्कन्धात्स्कन्धं व्रजन्वो वृजिनविजितये भास्वतः स्यन्दनोऽस्तु ॥६३॥

अन्धकार की राशि का नाश करके अपने प्रारम्भिक[1] संसार की दीक्षा-विधि में समर्थ हजार किरणों को धारण करने वाले सूर्य द्वारा अनुपम गौरवपूर्ण स्थान पर पहुँचा दिया जाने वाला, नितान्त श्रान्त[2] एवं (रथ के) अत्यधिक भार को सहन करने में असमर्थ प्रतीत होने वाले वायु के एक स्कन्ध से दूसरे स्कन्ध पर जाने वाला सूर्य-रथ आप लोगों को पापों के प्रति विजय प्रदान करे ॥ ६३ ॥

योक्त्रीभूतान्युगस्य ग्रसितुमिव पुरो दन्दशूकान्दधानो
द्वेधाव्यस्ताम्बुवाहावलिविहितबृहत्पक्षविक्षेपशोभः ॥
सावित्रः स्यन्दनोऽसौ निरतिशयरयप्रीणितानूरुरेनः-
क्षेपीयो वो गरुत्मानिव हरतु हरीच्छाविधेयप्रचारः ॥६४॥

गरुत्मान्[3] की भाँति सूर्य-रथ शीघ्र ही आप लोगों के पापों का

---

१. जिस प्रकार कोई बालक जब युवावस्था में प्रवेश करता है, तब उसका प्रारम्भिक याग 'यज्ञोपवीत संस्कार' सम्पन्न होता है, उसी प्रकार किरणें भी प्रत्येक दिवस का प्रारम्भ करते समय प्रारम्भिक याग करती हैं और उनके लिए अन्धकार का नाश करना ही याग है ।

२. जिस प्रकार कोई बोझ अत्यधिक भारी होने के कारण एक मनुष्य के द्वारा नहीं ढोया जा सकता है, वह कई मनुष्यों द्वारा क्रम से ढोया जाता है । उसी प्रकार यह रथ भी बारी-बारी से वायु के द्वारा ढोया जाता है । यहाँ वायु को मनुष्यरूप में कल्पित किया गया है, अतएव उत्प्रेक्षालंकार है ।

३. मयूर की भाषा में प्रायः श्लेष है । ये ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो श्लिष्ट होने के कारण द्वयर्थक हैं । प्रस्तुत श्लोक में गरुड़ पक्ष में इसका अर्थ निम्न प्रकार से होगा—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विनाश करे, जिसके अग्रभाग में जुआ में लगे चमड़े की रस्सी की भाँति सर्प[1] (भस्म होने के लिए) लगे रहते हैं, जो दो भागों में विभक्त किये गये बादलों की पंक्ति द्वारा बड़े-बड़े पंखों को फैलाने की शोभा धारण करता है और अपने अधिक वेग से अनूरु को प्रसन्न कर देता है एवं जिसकी गति हरि (अश्वों) की इच्छा के आधीन है ॥ ६४ ॥

एकाह्नैव दीर्घां त्रिभुवनपदवीं लङ्घयन् यो लघिष्ठः
पृष्ठे मेरोर्गरीयान् दलितमणिदृषत्त्विषि पिंषञ्छिरांसि ॥
सर्वस्यैवोपरिष्टादथ च पुनरधस्तादिवास्ताद्रिमूर्ध्नि
ब्रध्नस्याव्यात्स एवं दुरधिगमपरिस्पन्दनः स्यन्दनो वः ॥६५॥

दुरधिगम परिस्पन्दन वाला, अत्यन्त लघु होने पर भी विशाल त्रिभुवन मार्ग को एक ही दिवस में लाँघ जाने वाला, मेरु पर्वत के ऊर्ध्वभाग पर खण्डित मणियों से कान्तिमान् शिखरों को पीसते रहने से अत्यन्त गुरु, संसार के ऊपर विद्यमान रहने वाला एवं अस्ताचल के शिखर पर पहुँच जाने के अनन्तर नीचे प्रतीत होने वाला, सूर्य का, रथ आप लोगों की रक्षा करे ॥ ६५ ॥

जो (गरुड़) जुआ में लगे चमड़े की रस्सी के समान (लम्बे) सर्पों का भक्षण करना पसन्द करते हैं, अपने शक्तिशाली पंखों को कँपा कर तथा बादलों के समूह को अस्त-व्यस्त कर शोभा धारण करते हैं, अपने अद्वितीय वेग से अनूरु (अरुण) को प्रसन्न कर देते हैं, जिनका वेग हरि (विष्णु) की इच्छा के आधीन है, ऐसे गरुड़ के समान सूर्य-रथ आप लोगों के पापों का शीघ्र ही विनाश करें।

१. विष्णुपुराण (२. १०) के अनुसार सर्प सूर्य का रथ खीचते हैं। 'वहन्ति पन्नगाः' आदि वर्णन वहाँ मिलता है। इसकी टीका में 'रथं सन्नह्यन्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ 'रथ जोतते हैं' है। सम्भव है वहाँ पर इसका अर्थ यही हो कि चमड़े की रस्सी का स्थान ग्रहण करके सर्प रथ को जोतने में सहायक होते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धूर्ध्वस्ताग्र्यग्रहाणि ध्वजपटपवनान्दोलितेन्दूनि दूरं
राहौ ग्रासाभिलापादनुसरति पुनर्दत्तचक्रव्यथानि ॥
श्रान्ताश्वश्वासहेलाधुतविबुधधुनीनिर्झराम्भांसि भद्रं
देयासुर्वो दवीयो दिवि दिवसपतेः स्यन्दनप्रस्थितानि ॥६६॥

धुरी के आगे पड़ने वाले ग्रहों को ध्वस्त करने वाले, ध्वज-पट के पवन से चन्द्रमा को कम्पित करने वाले, (सूर्य को) ग्रसने की अभिलाषा से पीछे-पीछे आते हुए राहु[1] को चक्र द्वारा व्यथित करने वाले एवं थके हुए अश्वों की श्वास-क्रीड़ा से आकाश-गंगा के वारि-प्रवाह के जल को कम्पित करने वाले, आकाश मार्ग में भ्रमण करते हुए सूर्य-स्यन्दन का प्रस्थान आप लोगों को समृद्धि प्रदान करे ॥ ६६ ॥

---

१. समुद्र-मंथन के उपरान्त समुद्र से अमृत के निकलने पर देवता और दैत्य दोनों उसके लिए लड़ने लगे। भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर अमृत-कलश को अपने करतल पर धारण कर लिया। विष्णु ने एक पंक्ति में देवताओं को और दूसरी पंक्ति में दैत्यों को बैठा कर पहले देवताओं की ओर से अमृत बाँटना प्रारम्भ किया। उनका आशय यह था कि पहले देवताओं में अमृत बाँट कर उसको वहीं समाप्त कर दिया जाय। राहु नामक दैत्य उनके इस अभिप्राय को समझ गया और देव-वेष में चुपके से आकर चन्द्रमा तथा सूर्य के मध्य में बैठ गया। मोहिनी ने उसे भी अमृत पिला दिया किन्तु पास बैठे सूर्य और चन्द्रमा ने यह देख लिया था और जब उनके संकेत से सब तथ्य विष्णु को ज्ञात हुआ, तब उन्होंने चक्र से राहु का सिर और धड़ अलग-अलग कर दिया। सिर का भाग राहु तथा धड़ का भाग केतु कहलाया। अमृत-पान कर चुकने के कारण वह मरा नहीं। तभी से सूर्य के साथ राहु का वैर है। वह प्रतिशोध लेने के लिए कभी-कभी सूर्य को ग्रहण के समय ग्रस लेता है। महाभारत (१.१९. १-९) में इसका प्रसंग मिलता है। इस श्लोक में कवि यह बतलाना चाहता है कि राहु सूर्य की खोज में जब उनके समीप जाता है, तब रथ के चक्र को देख कर उसे विष्णु के चक्र की स्मृति हो आती है तथा वह भयभीत होकर भाग जाता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अक्षे रक्षां निबध्य प्रतिसरवलयैर्योजयन्त्यो युगाग्रं
धूःस्तम्भे दग्धधूपाः प्रहितसुमनसो गोचरे कूबरस्य ॥
चर्चाश्चक्रे चरन्त्यो मलयजपयसा सिद्धवध्वस्त्रिसंध्यं
वन्दन्ते यं द्युमार्गे स नुदतु दुरितान्यंशुमत्स्यन्दनो वः ॥६७॥

अंशुमान् (सूर्य) का वह रथ आप लोगों के पापों को दूर करे, जिसको सन्ध्याओं के सन्ध्याओं के समय अक्ष में रक्षासूत्र बाँधकर, (वैवाहिक) मंगलसूत्र से जुआ के अग्रभाग को युक्त कर, स्तम्भ के समान धुरी में धूप देकर तथा कूबर में फूल चढ़ाकर एवं मलयज के जल से चक्र का अभिषेक कर सिद्धांगनाएँ वन्दना करती हैं ॥ ६७ ॥

उत्कीर्णस्वर्णरेणुद्रुतखुरदलिता पार्श्वयोः शश्वदश्वै-
रश्रान्तभ्रान्तचक्रक्रमनिखिलमिलन्नेमिनिम्ना भरेण ॥
मेरोर्मूर्धन्यघं वो विघटयतु रवेरेकवीथी रथस्य
स्वोष्मोदक्ताम्बुरिक्तप्रकटितपुलिनोद्धूसरा स्वर्धुनीव ॥६८॥

मेरु पर्वत के शिखर पर ढाल होने के कारण निरन्तर चलते हुए रथ की सम्पूर्ण धँसी हुई नेमि से गहरी, (मार्ग) के दोनों ओर शीघ्रता से पड़ने वाले अश्वों के खुर से बार-बार विक्षिप्त सुवर्ण की रेणु से युक्त तथा अपनी उष्मा से कर्षित (पङ्किल गड्ढों के) जल के रिक्त होने से किनारों के प्रकट होने से धूमिल, सूर्य के[1], रथ की एक वीथी आप लोगों के पाप को विनष्ट करें ॥ ६८ ॥

---

१. अन्य श्लोकों की भाँति मयूर ने यहाँ भी श्लेष का आश्रय लिया है। इस श्लोक में सूर्य के रथ की वीथी की तुलना आकाश-गंगा से दी गयी है। सम्पूर्ण श्लोक में तो श्लेष नहीं किन्तु बाद के दो पादों में श्लिष्ट पदों का प्रयोग होने के कारण आकाश-गंगा पक्ष में अर्थ इस प्रकार होगा—(नदी के) दोनों तट की (भूमि) शीघ्रता से पड़ने वाले अश्वों के खुर से विक्षिप्त स्वर्णिम बालुका से युक्त हैं तथा अपनी ऊष्मा से कर्षित जल के रिक्त होने के कारण बालुका-प्रदेश के प्रकट होने से धूमिल हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नन्तुं नाकालयानामनिशमनुयतां पद्धतिः पङ्क्तिरेव
क्षोदो नक्षत्रराशेरदयरयमिलच्चक्रपिष्टस्य धूलिः ॥
हेषाह्रादो हरीणां सुरशिखरिदरीः पूरयन्नेमिनादो
यस्याव्यात्तीव्रभानोः स दिवि भुवि यथा व्यक्तचिह्नो रथो वः॥६९॥

क्योंकि प्रणाम करने के लिए निरन्तर पीछे-पीछे आते हुए स्वर्ग-लोक निवासियों की पंक्ति ही इसका मार्ग है, (अतएव) आकाश में पृथ्वी पर गमन करते हुए की भाँति स्पष्ट चिह्नों को व्यक्त करने वाला, प्रखर वेग से संसक्त चक्र से पिसे हुए नक्षत्र-मण्डल के चूर्णरूपी धूल से युक्त तथा अश्वों को हिनहिनाहट तथा नेमि की ध्वनि से सुमेरु-पर्वत की कन्दराओं को पूर्ण करने वाला, तीव्रभानु का, रथ आप लोगों की रक्षा करे ॥ ६९ ॥

निःस्पन्दानां विमानावलिविततदिवां देववृन्दारकाणां
वृन्दैरानन्दसान्द्रोद्यममपि वहतां विन्दतां विन्दतां वन्दितुं नो ॥
मन्दाकिन्याममन्दः पुलिनभृति मृदुर्मन्दरे मन्दिराभे
मन्दारैर्मण्डितारं दधदरि दिनकृत्स्यन्दनः स्तान्मुदे वः ॥७०॥

[1]सूर्य का रथ आप लोगों को हर्ष प्रदान करे, जो मन्दाकिनी के बालुका-तट पर तो तीव्र गति से चलता है किन्तु नगर के समान मन्दराचल पर मन्दगति हो जाता है। यह (रथ) विमानों की पंक्तियों से आकाश को आच्छादित करने वाले, श्रान्त किन्तु वन्दना

---

१. इस पाद से यह प्रतीत होता है कि सूर्य-किरणें विस्तृत स्थानों पर, नदी के तट अथवा बालुका प्रदेश पर विस्तृत रहती हैं किन्तु नगर में भवन आदि होने से सूर्य की किरणें सभी स्थानों पर नहीं पहुँच पाती हैं। मन्दराचल अपनी छोटी घाटियों, कन्दराओं तथा छोटे शृंगों के कारण नगर के समान हैं। इसके अतिरिक्त रिक्त स्थानों पर रथ तीव्र गति से चलता है किन्तु नगर में इसकी गति मन्द हो जाती है क्योंकि नगर की सड़कें कम विस्तृत होती हैं तथा भीड़ आदि के कारण भी रथ की गति मन्द हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने के लिए न पा सकने वाले, देवमुख्यों के समूहों द्वारा अर्पित मन्दार पुष्पों से सुशोभित धारागज वाले चक्र को धारण करता है ॥ ७० ॥

चक्री चक्रारपङ्क्तिं हरिरपि च हरीन् धूर्जटिर्धूर्ध्वजान्ता-
नक्षं नक्षत्रनाथोऽरुणमपि वरुणः कूबराग्रं कुबेरः ॥
रंहः संघः सुराणां जगदुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य
स्तौति प्रीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरुचेः सोऽवतात्स्यन्दनो वः ॥७१॥

[1]संसार का उपकार करने के लिए नित्य अपने कार्य में संलग्न सूर्य-रथ आप लोगों की रक्षा करे, जिसके वेग की वन्दना प्रसन्नता से पूर्ण देवताओं का समूह करता है, चक्र धारण करने वाले विष्णु (जिसके) चक्रारपंक्ति की, हरि (इन्द्र) हरि (अश्वों) की, धूर्जटि[2] (शिव) पताका के अग्रभाग की, नक्षत्रों के स्वामी (चन्द्रमा) अक्ष की, वरुण अरुण की तथा कुबेर कूबर के अग्रभाग की स्तुति करते हैं ॥ ७१ ॥

नेत्राहीनेन मूले विहितपरिकरः सिद्धसाध्यैर्मरुद्भिः
पादोपान्ते स्तुतोऽलं वलिहरिरभसाकर्षणाबद्धवेगः ॥

१. यह श्लोक मम्मटकृत 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत किया गया है। मम्मट ने इसे 'अनुप्रास में दोष' के उदाहरण में प्रस्तुत किया है। यहाँ कवि की प्रतिभा से यमक अलंकार का अत्यन्त सुन्दर निरूपण हुआ है। सभी देवता लगभग अपने नामों से मिलते-जुलते रथ के भाग की वन्दना करते हैं। जैसे हरि (इन्द्र अथवा विष्णु) हरि (अश्वों) की, चक्रिन् (विष्णु) चक्र की, वरुण अरुण की स्तुति करते हैं।

२. धूर्जटि भगवान् शिव का नाम है। संभवतः इनका यह नाम जटाजूट के कारण पड़ा है। महाभारत (७. २०२. १२९) में कहा गया है 'धूम्ररूपं चयत् यस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते' अर्थात् क्योंकि इनका आकार धूम्र के समान है अतएव इन्हें धूर्जटि कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भ्राम्यन् व्योमाम्बुराशावशिशिरकिरणस्यन्दनः संततं वो
दिश्याल्लक्ष्मीमपारामतुलितमहिमेवापरो मन्दराद्रिः ॥ ७२ ॥

सूर्य[1] का रथ, जिसकी महिमा अतुलित है, आप लोगों को अपार समृद्धि प्रदान करे। यह गगन-वारिधि में घूमता हुआ एक अन्य मन्दराचल के समान है। इसके अन्तर में शरीर के निम्न भाग से शून्य सारथि (अरुण) उद्यम कर रहा है, सिद्ध, साध्य तथा मरुत् चक्र के समीप में (स्थित होकर) इसकी स्तुति कर रहे हैं। यह बलवान अश्वों के द्वारा वेग से खींचे जाने पर गति धारण करता है ॥ ७२ ॥

यज्ज्यायो बीजमह्नामपहततिमिरं चक्षुषामञ्जनं यद्
द्वारं यन्मुक्तिभाजां यदखिलभुवनज्योतिषामेकमोकः ॥
यद्वृष्टयम्भोनिधानं धरणिरससुधापानपात्रं महद्य-
द्दिश्यादीशस्य भासां तदविकलमलं मङ्गलं मण्डलं वः ॥७३॥

---

१. इस श्लोक में श्लिष्ट पदों के विन्यास के कारण सम्पूर्ण श्लोक का मन्दराचल के पक्षमें दूसरा अर्थ होगा—

जिसके मूल में मथानी की रस्सी के समान अहीन* (सर्पराज) वासुकि उद्यम कर रहा है, उपत्यका में (स्थित) साध्य, सिद्ध एवं मरुत् जिसकी स्तुति कर रहे हैं तथा जो बलि (राक्षस) तथा हरि (इन्द्र) के द्वारा खींचे जाने पर वेग धारण करता है, ऐसे मन्दराचल के समान सूर्य-रथ, जिसकी महिमा अतुलित है, आप लोगों को अपार समृद्धि प्रदान करे।

---

* समुद्र-मन्थन में वासुकि (सर्पराज) अथवा अहीन ने वेग से घूमने वाली मथानी की रस्सी का काम किया। यह रस्सी देवताओं तथा दानवों के द्वारा खींची गई थी। देवताओं ने इसका पार्श्व भाग पकड़ा तथा दानवों ने सर्प का मुख। इस श्लोक में इन्द्र तथा बलि क्रमशः देवताओं तथा दानवों के प्रतिनिधि रूप में ग्रहण किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिन का प्रशस्त बीज, नेत्रों के अन्धकार को दूर करने के लिए अञ्जन-सदृश, मुक्तिभागी योगियों का द्वार, सम्पूर्ण भुवन के तेज का एकमात्र आश्रय, वृष्टि के द्वारा जल का निधान तथा पृथ्वी के सुधा-जल का पान करने के लिए सुपात्र, दीप्ति के ईश (सूर्य) का मण्डल आप लोगों को पर्याप्त मंगल प्रदान करे ॥ ७३ ॥

वेलावर्धिष्णु सिन्धोः पय इव खमिवार्धोद्गताग्र्यग्रहोडु
स्तोकोद्भिन्नस्वचिह्नप्रसवमिव मधोरास्यमस्यन्मनांसि ॥
प्रातः पूष्णोऽशुभानि प्रशमयतु शिरःशेखरीभूतमद्रेः
पौरस्त्यस्योद्गभस्तिस्तिमिततमतमःखण्डनं मण्डलं वः ॥७४॥

पूर्वीय पर्वत पर अलंकार के समान प्रतीत होने वाला, प्रातःकाल अत्यन्त गहन अन्धकार का विनाश करने वाला, समयानुसार बढ़ने के कारण सिन्धु-जल के समान, पूर्व दिशा के ग्रह एवं नक्षत्रों को धूमिल बना देने के कारण आकाश के समान तथा आन्तरिक गुण अर्ध विकसित (तेज) का किञ्चित्मात्र विकास होने से प्रारम्भ में वसन्त-प्रवेश के समान मनुष्यों का मन मोहित करने वाला, पूषन् का, दीप्तिमान मण्डल आप लोगों के अशुभ का शमन करे ॥ ७४ ॥

प्रत्युप्तस्तप्तहेमोज्ज्वलरुचिरचलः पद्मरागेण येन
ज्यायः किंजल्कपुञ्जो यदलिकुलशितेरम्बरेन्दीवरस्य ॥
कालव्यालस्य चिह्नं महिततमम्होमूर्ध्नि रत्नं महद्य-
द्दीप्तांशोः प्रातरव्यात्तदविकलजगन्मण्डनं मण्डलं वः ॥७५॥

प्रातःकाल सम्पूर्ण जगत् का अलंकार, तप्तस्वर्ण की उज्ज्वल कान्ति वाले पर्वत को पद्मरागमणि के सदृश व्यक्त करने वाला, भ्रमर-समूह से काले आकाशरूपी नील कमल का उत्तम पराग-केसरपुञ्ज, [1]काल-व्याल की

---

१. सम्भवतः काल-व्याल से कवि का संकेत एक हजार फणों वाले शेषनाग से है, जो विष्णु की शय्या कहे जाते हैं तथा क्षीरसागर के तल पर स्थित रहते हैं। इन्हें नित्यता का चिह्न स्वरूप माना जाता है। इनका एक नाम अनन्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नागमणि तथा दिन के मस्तक पर अत्यन्त प्रशस्त महान् रत्न, सूर्य का मण्डल आप लोगों की रक्षा करे ॥ ७५ ॥

कस्त्राता तारकाणां पतति तनुरवश्यायबिन्दुर्यथेन्दु-
विंद्राणा दृक्स्मरारेरुरसि मुररिपोः कौस्तुभो नोद्गभस्तिः ॥
वह्नेः सापह्नवेन द्युतिरुदयगते यत्र तन्मण्डलं वो
मार्तण्डीयं पुनीताद्दिवि भुवि च तमांसीव मुष्णन्महांसि ॥७६॥

पृथ्वी तथा आकाश में अन्धकार के समान अन्य तेजों का हरण करने वाला सूर्य-मण्डल आप लोगों को पवित्र करे, जिसके उदित होने पर अग्नि की कान्ति छिप-सी जाती है, ओस के क्षीण कण की भाँति चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर तारों का कोई रक्षक नहीं रहता है, जो स्मर (कामदेव) के शत्रु (शिव) के नेत्र को मलिन करता है एवं मुरके शत्रु (विष्णु) के वक्षःस्थल पर स्थित कौस्तुभ मणि से दीप्ति नहीं निकलने देता है ॥ ७६ ॥

यत्प्राच्यां प्राक्चकास्ति प्रभवति च यतः प्राच्यसावुज्जिहाना-
दिद्धं मध्ये यदह्नो भवति ततरुचा येन चोत्पाद्यतेऽहः ॥
यत्पर्यायेण लोकानवति च जगतां जीवितं यच्च तद्वो
विश्वानुग्राहि विश्वं सृजदपि च रवेर्मण्डलं मुक्तयेऽस्तु ॥७७॥

विश्व की सृष्टि करने पर भी उसमें अनुग्रह रखने वाला, प्रथम पूर्व दिशा में प्रकाशित होने वाला, दिन के मध्य भाग में प्रचण्ड हो जाने वाला, पूर्व दिशा को श्रेष्ठता प्रदान करने वाला, दिन उत्पन्न करने वाला, जगत् का प्राण एवं अपने क्रमिक पुनरागमन से प्राणियों की रक्षा करने वाला, रवि का मण्डल आप लोगों को मोक्ष प्रदान करे ॥ ७७ ॥

भी है। इनके मुकुट को एक हजार रत्न सुशोभित करते हैं तथा वे अपने मस्तक पर समस्त संसार को धारण करते हैं। विष्णु पुराण (२-५) में इसका वर्णन आया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

शुष्यन्त्यूढानुकारा मकरवसतयो मारवीणां स्थलीनां
येनोत्तप्ताः स्फुटन्तस्तडिति तिलतुलां यान्त्यगेन्द्रा युगान्ते ।
तच्चण्डांशोरकाण्डत्रिभुवनदहनाशङ्कया धाम कृच्छ्रात्
संहृत्यालोकमात्रं प्रलघु विदधतः स्तान्मुदे मण्डलं वः ॥७८॥

युग की समाप्ति के समय समुद्र को संतप्त कर मरु प्रदेश के सदृश एवं विशाल पर्वत को उत्तप्त कर तड़-तड़ करते हुए तिल के सदृश बनाने वाला, (किन्तु इस समय) असमय में ही त्रिभुवन-दहन की आशंका से प्रयत्नपूर्वक अपनी दीप्ति को संकीर्ण करके केवल आलोक-मात्र का विस्तार करने वाला, सूर्य का मण्डल आप लोगों को हर्ष प्रदान करे ॥ ७८ ॥

उद्यद्द्यूद्यानवाप्यां बहुलतमतमःपङ्कपूरं विदार्य
प्रोद्भिन्नं पत्रपार्श्वेष्वविरलमरुणच्छायया विस्फुरन्त्या ॥
कल्याणानि क्रियाद्वः कमलमिव महन्मण्डलं चण्डभानो-
रन्वीतं तृप्तिहेतोरसकृदलिकुलाकारिणा राहुणा यत् ॥ ७९ ॥

जैसे अलिकुलों द्वारा कमल अनुसरित होता है; उसी प्रकार राहु द्वारा अनुसरित कमल के समान, आकाश-वाटिका की वापी में पंक के समान घोर अंधकार समूह को विदीर्ण करके विकसित होने वाला, अश्वों के समीप निरन्तर विस्तृत अरुण-कान्ति से व्याप्त एवं तृप्ति का कारण, चण्डभानु का विस्तृत मण्डल आप लोगों को समृद्धि प्रदान करे ॥ ७९ ॥

चक्षुर्दक्षद्विषो यन्न तु दहति पुरः पूरयत्येव कामं
नास्तं जुष्टं मरुद्भिर्यदिह नियमिनां यानपात्रं भवाब्धौ ॥
यद्वीतश्रान्ति शश्वद्भ्रमदपि जगतां भ्रान्तिमभ्रान्ति हन्ति
ब्रध्नस्याव्याद्विरुद्धक्रियमथ च हिताधायि तन्मण्डलं वः ॥८०॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

दक्ष के शत्रु (शिव) का नेत्र होते हुए भी काम-दहन न करनेवाला अपितु पूर्ण करने वाला, इस लोक में संयमी पुरुषों के लिए भवसागर में नौकारूप होते हुए भी मरुतों से संचालित न होनेवाला अपितु उनके द्वारा वन्दनीय, कान्ति से शून्य होकर निरन्तर भ्रमण करता हुआ भी पाप-रहित होकर तीनों भुवनों के पाप का विनाश करने वाला, (इस प्रकार) विरोधी कार्यों को करने वाला किन्तु हितकारी, ब्रध्न (सूर्य) का मण्डल आप लोगों की रक्षा करे ॥ ८० ॥

सिद्धैः सिद्धान्तमिश्रं श्रितविधि विबुधैश्चारणैश्चाटुगर्भं
गीत्या गन्धर्वमुख्यैर्मुहुरहिपतिभिर्यातुधानैर्यतात्म ।
साधं साध्यैर्मुनीन्द्रैर्मुदितमतमनो मोक्षिभिः पक्षपातात्
प्रातः प्रारभ्यमाणस्तुतिरवतु रविर्विश्ववन्द्योदयो वः ॥८१॥

विश्व[1] के द्वारा स्तुत सूर्योदय आपकी रक्षा करे, जिसकी सिद्धों के द्वारा सिद्धान्त से मिश्रित, देवताओं के द्वारा यज्ञादि क्रिया के सम्पादन से, चारणों के द्वारा चाटुकारिता के साथ, गन्धर्वमुख्यों के द्वारा गीत से, नागराजों के द्वारा बार-बार, यातुधानों के द्वारा आत्मसंयम से, साध्यों के द्वारा अर्घसहित, मुनीन्द्रों के द्वारा प्रसन्न हृदय से तथा मोक्षार्थियों के द्वारा पक्षपातसहित स्तुति-गीतों से प्रातःकाल वन्दना होती है ॥ ८१ ॥

भासामासन्नभावादधिकतरपटोश्चक्रवालस्य तापा-
च्छेदादच्छिन्नगच्छत्तुरगखुरपुटन्यासनिःशङ्कटङ्कैः ॥

---

१. इस प्रकार का वर्णन महाभारत (३.३.४०) में भी प्राप्त होता है, जहाँ यह कहा गया है कि आकाश-मार्ग में जाते हुए सूर्य के रथ का सिद्धों, चारणों, यक्षों, गन्धर्वों तथा सर्पों के द्वारा वरदान प्राप्त करने के लिए अनुसरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण के अनुसार आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षस-वृन्द सूर्य के रथ का पथ-प्रदर्शन करते हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग एक मास तक सूर्य-रथ का पथ-प्रदर्शन क्रमशः करता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

निःसङ्गस्यन्दनाङ्गभ्रमणनिकषणात्पातु वस्त्रिप्रकारं
तप्तांशुस्तत्परीक्षापर इव परितः पर्यटन्हाटकाद्रिम् ॥ ८२ ॥

(सुवर्ण को) समीप के अत्यन्त प्रचण्ड दीप्ति-मंडल से तपा कर, निरन्तर चलते हुए अश्वों के खुर-पुट के स्थापन के निःशंक टंक (छोनी) के द्वारा काटने से तथा आसक्ति रहित स्यन्दन के चक्र की स्वतंत्र गति की कसौटी से (इन तीन प्रकार से) सुवर्ण पर्वत (सुमेरु) पर उसकी तीन प्रकार की परीक्षा में संलग्न (जौहरी) की भाँति चारों ओर घूमते हुए तप्तांशु (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें ॥ ८२ ॥

नो शुष्कं नाकनद्या विकसितकनकाम्भोजया भ्राजितं तु
प्लुष्टा नैवोपभोग्या भवति भृशतरं नन्दनोद्यानलक्ष्मीः ।
नो शृङ्गाणि द्रुतानि द्रुतममरगिरेः कालधौतानि धौता-
नीद्धं धाम द्युमार्गे म्रदयति दयया यत्र सोऽर्कोऽवताद्वः ॥८३॥

वह अर्क (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करे, जो (जिस समय) दया करके अपनी दीप्त रश्मियों को आकाश में मृदु कर देते हैं, (उस समय) आकाश-गंगा सूखती नहीं अपितु विकसित कनक-कमलों से सुशोभित हो जाती है, नन्दनवन (इन्द्र की वाटिका) की शोभा दग्ध नहीं होती अपितु अत्यधिक उपभोग-योग्य हो जाती है और देवताओं के पर्वत सुमेरु के स्वर्णिम शिखर पिघलते नहीं अपितु चमकने लगते हैं ॥ ८३ ॥

ध्वान्तस्यैवान्तहेतुर्न भवति मलिनैकात्मनः पाप्मनोऽपि
प्राक्पादोपान्तभाजां जनयति न परं पङ्कजानां प्रबोधम् ॥
कर्ता निःश्रेयसानामपि न तु खलु यः केवलं वासराणां
सोऽव्यादेकोद्यमेच्छाविहितबहुबृहद्विश्वकार्योऽर्यमा वः ॥८४॥

संसार में अपनी इच्छा से तथा एकमात्र अपने ही प्रयत्नों से अनेक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले, केवल मलिनआत्मा वाले अन्धकार के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही विनाशक नहीं अपितु पाप के भी (विनाशक), केवल कमलों को ही विकसित न करने वाले अपितु चरणों (किरणों) के समीप रहने वालों को भी परम प्रबोध करने वाले एवं केवल दिवस के ही कर्त्ता नहीं अपितु मोक्ष भी प्रदान करने वाले अर्यमा (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें ॥ ८४ ॥

लोटँल्लोष्टाविचेष्टः श्रितशयनतलो निःसहीभूतदेहः
संदेही प्राणितव्ये सपदि दश दिशः प्रेक्षमाणोऽन्धकाराः ॥
निःश्वासायासनिष्ठः परमपरवशो जायते जीवलोकः
शोकेनेवान्यलोकानुदयकृति गते यत्र सोऽर्कोऽवताद्वः ॥८५॥

वह अर्क (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करे, जिसके अन्य लोक में उदय होने के लिए चले जाने पर जीव लोक शोक से संतप्त के समान निश्वास भरता है, थकावट से शय्या का आश्रय लेता है, लोष्ठ के समान चेष्टारहित होकर लोटता रहता है एवं जीवन के विषय में शंकित हो जाता है, जब वह दश आशाओं को अन्धकार में निमग्न पाता है ॥ ८५ ॥

क्रामँल्लोलोऽपि लोकाँस्तदुपकृतिकृतावाश्रितः स्थैर्यकोटिं
नृणां दृष्टिं विजिह्मां विदधदपि करोत्यन्तरत्यन्तभद्राम् ॥
यस्तापस्यापि हेतुर्भवति नियमिनामेकनिर्वाणदायी
भूयात्स प्रागवस्थाधिकतरपरिणामोदयोऽर्कः श्रिये वः ॥८६॥

पूर्वावस्था से अधिक परिवर्तन के साथ उदित होने वाले, चाञ्चल्य से त्रिलोक का उल्लंघन करते हुए भी उपकार में स्थिरता का आश्रय लेने वाले, यद्यपि मनुष्यों की दृष्टि को वक्र रखते हैं तथापि अन्तरात्मा को अत्यन्त कृतार्थ कर देने वाले, ताप-हेतु होने के साथ ही साथ संयमियों के लिए एकमात्र निर्वाणदाता सूर्य आपकी विभूति के लिए हों ॥ ८६ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यापन्नर्तुर्न कालो व्यभिचरति फलं नौषधीर्वृष्टिरिष्टा
नेष्टैस्तृप्यन्ति देवा नहि वहति मरुन्निर्मलाभानि भानि ॥
आशाः शान्ता न भिन्दन्त्यवधिमुदधयो बिभ्रति क्ष्माभृतः क्ष्मां
यस्मिंस्त्रैलोक्यमेवं न चलति तपति स्तात्स सूर्यः श्रिये वः ॥८७॥

वह सूर्य आप लोगों के अभ्युदय के लिए हों, जिनके प्रकाशित रहने पर ऋतुएँ अपने नियत समय पर क्रमशः आती हैं, लता एवं वृक्षादिकों में फल लगने में विघ्न नहीं पड़ता है, वृष्टि सबको इष्ट रहती है, देवता यज्ञादि से प्रसन्न रहते हैं, पवन प्रवाहित होता रहता है, नक्षत्रसमूह निर्मल आभा को धारण करते हैं, दिशाएँ प्रसन्न रहती हैं, समुद्र अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करते हैं तथा पर्वत पृथ्वी को धारण किये रहते हैं। इस प्रकार त्रिलोक अपने-अपने कार्य से विचलित नहीं होता है ॥ ८७ ॥

कैलासे कृत्तिवासा विहरति विरहत्रासदेहोढकान्तः
श्रान्तः शेते महाहावधिजलधि विना छद्मना पद्मनाभः ॥
योगोद्योगैकतानो गमयति सकलं वासरं स्वं स्वयंभू-
र्भूरित्रैलोक्यचिन्ताभृति भुवनविभौ यत्र भास्वान्स वोऽव्यात् ॥८८॥

प्रकाशमान वह संसार के स्वामी सूर्य आप लोगों की रक्षा करें जिनके त्रिलोक (रक्षा) की चिन्ता धारण कर लेने पर चर्मवस्त्र को धारण करने वाले (शिव) वियोगभय से शरीर से ही अपनी प्रिया को धारण कर[1] कैलास पर्वत पर विहार करते हैं, पद्मनाभ (विष्णु) बिना

१. संभवतः यह भगवान् शिव के 'अर्धनारीश्वर' स्वरूप का वर्णन है। शिव का 'अर्धनारीश' रूप में वर्णन संभवतः बाद में प्रचलित हुआ है। वेदों तथा पुराणों में शिव के उपर्युक्त रूप का वर्णन नहीं प्राप्त होता है। शिव का यह स्वरूप आधा पुरुष की आकृति का है तथा आधा स्त्री की आकृति का है। मयूर के सुभाषित संग्रहों में संगृहीत 'शिव तथा पार्वती' विषयक सात श्लोकों में भी इस स्वरूप का वर्णन आया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी वेष-परिवर्तन के समुद्र में नागराज (शेष) पर शयन करते हैं तथा स्वयंभू (ब्रह्मा) अपना सम्पूर्ण दिवस योग-उद्योग में लीन रहकर व्यतीत करते हैं ॥ ८८ ॥

एतद्यन्मण्डलं खे तपति दिनकृतस्ता ऋचोऽर्चींषि यानि
द्योतन्ते तानि सामान्ययमपि पुरुषो मण्डलेऽणुर्यजूंषि ॥
एवं यं वेद वेदत्रितयमयमयं वेदवेदी समग्रो
वर्गः स्वर्गापवर्गप्रकृतिरविकृतिः सोऽस्तु सूर्यः श्रिये वः ॥८९॥

वह[1] सूर्य आपको समृद्धि प्रदान करें, जो स्वर्ग तथा मोक्ष के मूल कारण हैं एवं स्वयं विकाररहित हैं, जिन्हें जो यह आकाश में दिनकर का मण्डल तप रहा है, वही ऋचाएँ हैं, किरणें, जो चिनगारी फेंकती

---

१. सूर्यशतक के इस श्लोक पर शतपथ ब्राह्मण का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। शतपथ ब्राह्मण (१०·५·२) का प्रथम मंत्र 'यद् एतन्मण्डलं तपति' इत्यादि शब्दों से प्रारंभ होता है तथा सूर्यशतक का यह श्लोक 'एतद् यन्मण्डलं खे तपति' इत्यादि शब्दों से प्रारंभ होता है। यदि 'खे' शब्द बीच से हटा दिया जाय तो हमें ज्ञात हो जायगा कि शतपथ ब्राह्मण के उपरिलिखित शब्द ही भिन्न क्रम से यहाँ उपस्थित किए गए हैं। इसके आगे (१०.५-२.१-२) में वहाँ लगभग इसी प्रकार का वर्णन मिलता है, जो यहाँ दूसरे शब्दों में उपस्थित किया गया है। वहाँ ऋग्वेद के लिए 'ता ऋचः स ऋचां लोकः' शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनका अर्थ है—'ऋचाओ ! यही ऋग्वेद का प्रदेश है।' सामवेद के लिए वहाँ 'यद् एतद् अर्चिर् दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकः।' शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनका अर्थ है—जो किरणों के रूप में प्रकाशित होते हैं, वह महान धार्मिक कार्य गीत है, यह सामवेद का प्रदेश है; तथा यजुर्वेद के लिए 'य एष एतस्मिन् मंडले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका अर्थ है 'जो इस मंडल में पुरुष है, वह अग्नि है, यज्ञसम्बन्धी मंत्र है तथा वही यजुर्वेद का प्रदेश है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण श्लोक पूर्णतया 'शतपथ' ब्राह्मण पर आधारित है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं, गीत (सामवेद) हैं, तथा मण्डल में जो अणुमात्र तथा ध्यानगम्य पुरुष है वही यजु (यजुर्वेद) हैं। इस प्रकार वेद-मर्मज्ञ समस्त वर्ग वेदत्रयी के रूप में जानता है ॥ ८९ ॥

नाकौकःप्रत्यनीकक्षतिपटुमहसां वासवाग्रेसराणां
सर्वेषां साधु पातां जगदिदमदितेरात्मजत्वे समेऽपि ॥
येनादित्याभिधानं निरतिशयगुणैरात्मनि न्यस्तमस्तु
स्तुत्यस्त्रैलोक्यवन्द्यैस्त्रिदशमुनिगणैः सोंऽशुमाञ् श्रेयसे वः ॥९०॥

यद्यपि सभी (देवता) समान रूप से अदिति-पुत्र हैं, जिनमें वासव (इन्द्र) प्रधान हैं तथा जिनकी शक्ति स्वर्ग-निवासियों के शत्रुओं का नाश करने में समर्थ है, जो इस संसार की सम्यक् रूप से रक्षा करते हैं किन्तु जो देवगण तथा मुनियों के द्वारा स्तुत्य हैं, (केवल वे ही) अपने अद्वितीय गुणों के कारण आदित्य (अदिति पुत्र) नाम धारण करता है; वही अंशुमान् (सूर्य) आप लोगों का कल्याण करे ॥९०॥

भूमिं धाम्नोऽभिवृष्ट्या जगति जलमयीं पावनीं संस्मृताव-
प्याग्नेयीं दाहशक्त्या मुहुरपि यजमानां यथाप्रार्थितार्थैः ॥
लीनामाकाश एवामृतकरघटितां ध्वान्तपक्षस्य पर्व-
ण्येवं सूर्योऽष्टभेदां भव इव भवतः पातु बिभ्रत्स्वमूर्तिम् ॥९१॥

भव (शिव) की भाँति आठ[1] स्वरूप धारण करने वाले सूर्य

---

१. सूर्यशतक की त्रिभुवनपाल विरचित टीका में शिव की यह अष्टमूर्तियाँ कही गई हैं—'क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाशसोमसूर्याख्याः । अर्थात् 'पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्रमा तथा सूर्य ये शिव की अष्टमूर्तियाँ हैं।' इससे अधिक स्पष्ट उल्लेख हमें महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' की नान्दी में मिलता है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आप लोगों की रक्षा करें। (जिस प्रकार शिव जलरूप हैं, उसी प्रकार सूर्य) वृष्टि के द्वारा जलमयी मूर्ति धारण करते हैं। (जिस प्रकार शिव) पवनरूप हैं, (उसी प्रकार सूर्य) स्मरणमात्र से पवित्र करने वाले हैं। (जिस प्रकार शिव अग्नि रूप हैं उसी प्रकार सूर्य) अपनी दाहशक्ति के कारण अग्निरूप हैं। (जिस प्रकार शिव यजमानरूप हैं, उसी प्रकार सूर्य) यथाभिलषित धन देने के कारण यजमानरूप हैं। (जिस प्रकार शिव आकाशरूप हैं, उसी प्रकार सूर्य) आकाश में लीन रहने से व्योमरूप हैं। (जिस प्रकार शिव सूर्य तथा चन्द्र हैं, उसी प्रकार सूर्य) कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन चन्द्रमा से संगत होने के कारण चन्द्ररूप हैं ॥ ९१ ॥

प्राक्कालोन्निद्रपद्माकरपरिमलनाविर्भवत्पादशोभो
भक्त्या त्यक्तोरुखेदोद्गति दिवि विनतासूनुना नीयमानः ॥
सप्ताश्वाप्तापरान्तान्यधिकमधरयन्यो जगन्ति स्तुतोऽलं
देवैर्देवः स पायादपर इव मुरारातिरह्नां पतिर्वः ॥ ९२ ॥

दूसरे[1] मुर के शत्रु (विष्णु अथवा कृष्ण) की भाँति दिवसों के

यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

इसके अतिरिक्त महाभारत (३. ४९-८) में भी शिव को 'अष्टमूर्ति' कहा गया है।

१. इस श्लोक में सूर्य को विष्णु के समान बताया गया है। सम्पूर्ण श्लोक में सूर्य की विष्णु के साथ तुलना की गई है। श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग के कारण सम्पूर्ण श्लोक का अर्थ विष्णुपक्ष में इस प्रकार होगा—

प्रातःकाल जाग्रत् लक्ष्मी के हाथों के परिमर्दन से जिनके चरणों की शोभा प्रकट होती है, जिनका मार्ग विनता के पुत्र (गरुड) स्वर्ग में प्रदर्शित करते हैं, जो अपनी भक्ति के कारण श्रम का अनुभव नहीं करते हैं तथा जो सात लोकों के दूरतम अन्त को शीघ्रता से लाँघते हुए; देवताओं द्वारा, वन्दित हैं, ऐसे विष्णु के समान सूर्य आप लोगों की रक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वामी (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें, जिनके किरणों की शोभा प्रातःकाल विकसित कमलखण्ड में अवगाहन से प्रकट होती है, जिनको विनता के पुत्र (अरुण) आकाश में भक्तिपूर्वक मार्ग दिखाते हैं तथा अपनी जंघाओं के कष्ट का अनुभव न करते हुए ऊपर चढ़ते हैं, तथा जो सूर्य संसार की पश्चिमी सीमा का अपने सात अश्वों द्वारा बार-बार उल्लंघन करने के कारण देवताओं के द्वारा स्तुत हैं।

यः स्रष्टाऽपां पुरस्तादचलवरसमभ्युन्नतेर्हेतुरेको
लोकानां यस्त्रयाणां स्थित उपरि परं दुर्विलङ्घ्येन धाम्ना ॥
सद्यः सिद्ध्यै प्रसन्नद्युतिशुभचतुराशामुखः स्ताद्विभक्तो
द्वेधा वेधा इवाविष्कृतकमलरुचिः सोऽर्चिषामाकरो वः ॥९३॥

कमलों[1] की शोभा को प्रकट करने वाले, (वृष्टि द्वारा जल की सृष्टि करने वाले, पूर्व दिशा के सर्वश्रेष्ठ पर्वत (सुमेरु) के गौरव के एकमात्र कारण, अनुल्लंघनीय तेज के कारण तीनों लोकों के ऊपर वर्तमान तथा (अपने उदय से) चारों दिशाओं के मुखों को निर्मल कान्ति से दीप्तिमान बनाने वाले सूर्य, जो दो भागों में विभाजित;[2] सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की भाँति हैं, आप को शीघ्र ही समृद्धि प्रदान करें ॥९३॥

---

१. इस श्लोक में सूर्य की तुलना ब्रह्मा से की गई है। इससे पूर्व श्लोक ९१ तथा ९२ में इनकी तुलना क्रमशः शिव तथा विष्णु के साथ की गई है। प्रस्तुत श्लोक में श्लिष्ट पदों के विन्यास के कारण ब्रह्मा पक्ष में अर्थ इस प्रकार होगा—

(जिससे ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए थे, उसी) कमल की शोभा का उद्घाटन करने वाले, प्रारंभ में जल के कर्ता, प्रमुख पर्वतों की ऊँचाई के एकमात्र हेतु, अत्यन्त अनुल्लंघ्य स्थान पर स्थित होने के कारण तीनों लोकों से श्रेष्ठ, दिशाओं की भाँति चारों मुखों की निर्मल कान्ति से दीप्तिमान, दो भागों में विभाजित एवं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की भाँति किरणों के आकर (सूर्य) शीघ्र ही आपको समृद्धि प्रदान करें।

२. ब्रह्मा द्वारा निर्मित स्वर्णिम अण्डा ब्रह्मा से अभिन्न समझा जाता है क्योंकि इसीसे संसार एवं ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। यह अण्डा, जिसे ब्रह्माण्ड

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साद्रिद्यूर्वीनदीशा दिशति दश दिशो दर्शयन्प्राग्दृशो यः
सादृश्यं दृश्यते नो सदशशतदृशि त्रैदशे यस्य देशे ॥
दीप्तांशुर्वः स दिश्यादशिवयुगदशादर्शितद्वादशात्मा
शं शास्त्यश्वांश्च यस्याशयविदतिशयाद्दन्दशूकाशनाग्रः ॥९४॥

प्रातःकाल पर्वत, आकाश तथा समुद्रों के सहित दश दिशाओं को प्रकट करके दृष्टि (देखने की शक्ति) प्रदान करने वाले, प्रलयकाल की अवस्था में द्वादश[1] रूप प्रकट करने वाले तथा सर्पों का भक्षण करने वाले गरुड के ज्येष्ठ भ्राता (अरुण), जो इनके अश्वों के आशये को भली भाँति समझते हैं, के द्वारा नियंत्रित एवं दीप्त किरणों वाले सूर्य, जिनकी तुलना सहस्र-नेत्र[2] (इन्द्र) से सनाथ देवताओं के देश (स्वर्ग) में भी नहीं दिखलाई पड़ती है, आप लोगों को सुख प्रदान करें ॥ ९४ ॥

भी कहा जाता है, ब्रह्मा की समाधि-शक्ति से दो भागों में विभाजित हो गया था। इसका एक भाग स्वर्ग और दूसरा भाग पृथ्वी कहलाया। इसी कारण ब्रह्मा को 'द्वेधा' भी कहा जाता है। इस ब्रह्माण्ड का वर्णन मनुस्मृति (१.९-१३) में मिलता है।

१. द्वादश आदित्य सूर्य के द्वादश रूप हैं। महाभारत (आदिपर्व अध्याय १२१) में द्वादश आदित्यों का उल्लेख मिलता है। वहाँ धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु इन द्वादश आदित्यों का उल्लेख है। महाभारत (३.३.५९) में ही सूर्य के लिए कहा गया है कि अपने को द्वादश भागों में विभक्त कर तथा अनेक सूर्य बनकर हे सूर्य ! तुम्हीं समुद्र को अपनी किरणों से सुखा देते हो। वहाँ इस प्रकार वर्णन आया है—

कृत्वा द्वादशधाऽऽत्मानं द्वादशादित्यतां गतः।
संहृत्यैकार्णवं सर्वं त्वं शोषयसि रश्मिभिः।

२. महाभारत (१. २११. २२-२८) में कहा गया है कि इन्द्र के नेत्रों में वृद्धि होती गई क्योंकि वे तिलोत्तमा को देखना चाहते थे। इसलिए जिस ओर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसीनिर्झराम्भोजिनीनां
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभश्वभ्रपातानुबन्धि ।।
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जतां नैव यत्र
त्रातुं यातेऽन्यलोकान् स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हितं वः ।।९५।।

दिवस[1] के एकमात्र कारण (सूर्य) आप लोगों को जो हितकर हो वह प्रदान करें, जिनके अन्य लोकों की रक्षा करने के लिए चले जाने पर अगाध जलाशय, नदियाँ, झील, निर्झर तथा पुष्करिणी (पोखरी) सम्बन्धी तीर्थ व्यर्थ हो जाते हैं, समुद्र भी नरक-पात सम्बन्धी अशुभ पापों को दूर नहीं कर पाता है तथा आकाश-गंगा का जल भी मज्जन करने वालों के पाप को नहीं नष्ट कर सकता है। (भाव यह है कि सूर्य के अस्त हो जाने पर तीर्थ-स्नानों में स्नान करने पर भी पाप नष्ट नहीं होते हैं) ।। ९५ ।।

वह मुड़ती उसी ओर इन्द्र के नेत्र बन जाते थे। इस प्रकार उनके सहस्र नेत्र बन गए। एक अन्य गाथा के अनुसार इन्द्र ने गौतम की पत्नी अहल्या को एकबार भ्रष्ट कर दिया। गौतम ने क्रुद्ध होकर इन्द्र को शाप दिया कि उनका शरीर एक हजार भग-चिह्नों से युक्त होकर कुरूप हो जाय। इसका वर्णन महाभारत (१२. २६६. ४५-५०) में मिलता है। इसके पश्चात् कुछ समय बीतने पर मुनि को दया आ गई तथा उन्होंने दयायुक्त होकर एक हजार अपमानकारक चिह्नों को एक हजार नेत्रों में परिवर्तित कर दिया। इसका वर्णन महाभारत (१३-४१-२१) में प्राप्त होता है।

१. महाभारत में भी इस प्रकार वर्णन मिलता है—

तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्त्तेरन् मनीषिणः ।।

अर्थात् हे सूर्य ! यदि तुम्हारा उदय न हो तो यह संसार नेत्रविहीन हो जाय तथा मनीषी लोग धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति में अपने को प्रवृत्त न करें।

(महाभारत ३-३-५३)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एतत्पातालपङ्कप्लुतमिव तमसैवैकमुद्गाढमासी-
दप्रज्ञाताप्रतर्क्यं निरवगति तथालक्षणं सुप्तमन्तः ।।
यादृक्सृष्टेः पुरस्तान्निशि निशि सकलं जायते तादृगेव
त्रैलोक्यं यद्वियोगादवतु रविरसौ सर्गतुल्योदयो वः ।।९६।।

यह रवि (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें, जिनका उदय सृष्टि के तुल्य है (जिनके) वियोग में यह त्रैलोक्य प्रति रात्रि में वैसा ही हो जाता है, जैसा सृष्टि के पूर्व था[1] क्योंकि तब (यह त्रैलोक्य) प्रबल अन्धकार के द्वारा पाताल-पंक में निमग्न की भाँति हो जाता है, समझने योग्य नहीं रह जाता है, तर्क वितर्क के द्वारा ज्ञेय नहीं होता है, इन्द्रियों से इसका प्रत्यक्ष नहीं होता है, भेद करने वाले चिह्नों का अभाव हो जाता है तथा निद्रा में मग्न मनुष्य की भाँति रहता है ।। ९६ ।।

द्वीपे योऽस्ताचलोऽस्मिन्भवति खलु स एवापरत्रोदयाद्रि-
र्या यामिन्युज्ज्वलेन्दुद्युतिरिह दिवसोऽन्यत्र तीव्रातपः सः ।।
यद्वश्यौ देशकालाविति नियमयतो नो तु यं देशकाला-
वव्यात्स स्वप्रभुत्वाहितभुवनहितो हेतुरह्नामिनो वः ।। ९७ ।।

दिवस के हेतु (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें, जो अपने प्रभुत्व के

---

१. सृष्टि के पूर्व संसार की दशा एकदम अन्धकारपूर्ण थी तथा अन्य सभी लक्षणों से युक्त थी, जो इस श्लोक में दिए गए हैं। वास्तव में यह श्लोक या तो मनुस्मृति का अनुकरणमात्र है अथवा उसी का रूपांतर है। मनुस्मृति में सृष्टिकाल से पूर्व संसार का वर्णन इस प्रकार आया है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ।।

अर्थात् यह जगत् तमोरूप था, सर्वथा अग्राह्य था, भेद अथवा विशेषता प्रकट करने वाले चिह्नों से सर्वथा रहित था, इसके विषय में तर्क-वितर्क भी नहीं हो सकता था, अज्ञेय था एवं चारों ओर गाढ़ निद्रा में मग्न के समान था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा भुवनों का हित करते हैं, देश एवं काल से नियंत्रित नहीं हैं अपितु देश (दिवस) एवं काल (पूर्व दिशा) को वशीभूत किए रहते हैं क्योंकि जो इस द्वीप में अस्ताचल होता है, वहीं दूसरे द्वीप में उदयाद्रि (मेरु) होता है तथा जब यहाँ निर्मल चन्द्रमा की कान्ति वाली यामिनी होती है, दूसरे (स्थान) में वही तीक्ष्ण ताप वाला दिवस होता है ॥ ९७ ॥

व्यग्रैरुग्यग्रहेन्दुग्रसनगुरु भरैर्नो समग्रैरुदग्रैः
प्रत्यग्रैरीषदुग्रैरुदयगिरिगतो गोगणैर्गामयन् गाम् ॥
उद्गाढार्चिर्विलीनामरनगरनगग्रावगर्भामिवाह्ना-
मग्रे श्रेयो विधत्ते ग्लपयतु गहनं स ग्रहग्रामणीर्वः ॥९८॥

प्रत्येक दिवस की आरम्भ वेला में उदयगिरि (मेरु) की ओर प्रस्थान करते समय नवीन, शीघ्र ही उदित, सम्पूर्णता को न प्राप्त हुई, कम प्रचण्ड, चन्द्रमा तथा प्रमुख ग्रहों के अभिभव के महान् भार से युक्त होने के कारण व्यग्र, प्रचण्ड कान्ति से मेघों को (आकाश के) परिणाम की भाँति नष्ट कर देने वाली एवं देवताओं की नगरी (के स्वरूप) पर्वत (मेरु) के चारों ओर रहने वाली किरणसमूहों से पृथ्वी (अथवा आकाश) को प्रकाशित करने वाले, कल्याणकारी एवं ग्रहों के नेता (सूर्य) आप लोगों के पापों का नाश करें ॥ ९८ ॥

योनिः साम्नां विधाता मधुरिपुरजितो धूर्जटिः शंकरोऽसौ
मृत्युः कालोऽलकायाः पतिरपि धनदः पावको जातवेदाः ॥
इत्थं संज्ञा डवित्थादिवदमृतभुजां या यदृच्छाप्रवृत्ता-
स्तासामेकोऽभिधेयस्तदनुगुणगुणैर्यः स सूर्योऽवताद्वः ॥९९॥

विधाता (ब्रह्मा) साम (गीतों) की उत्पत्ति के स्थान (कहे जाते) हैं। मधु के शत्रु (विष्णु) अजित कहे जाते हैं, जटाजूट धारण करने वाले (शिव) शंकर—कल्याण करने वाले (कहे जाते हैं), मृत्यु

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(यम) काल (कहे जाते हैं), अलका[1] के पति (कुबेर) धन देने वाले (कहे जाते हैं) तथा जातवेद (अग्नि) पवित्र करने वाले (कहे जाते) हैं। देवताओं के उपर्युक्त नाम डवित्थादि की भाँति संयोग से उत्पन्न हैं, केवल सूर्य (ही) उन संज्ञाओं में निष्ठ (अपने) गुणों के कारण उनके (द्वारा) वाच्य हैं, वही सूर्य आप लोगों की रक्षा करें ॥ ९९ ॥

देवः किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाऽऽचार्य आहोस्विदर्यो
रक्षा चक्षुर्नु दीपो गुरुरुत जनको जीवितं बीजमोजः ॥
एवं निर्णीयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽसौ
सर्वाकारोपकारी दिशतु दशशताभोपुरभ्यर्थितं वः ॥१००॥

वे हजार किरणों वाले (सूर्य) आप लोगों की रक्षा करें, जिनके विषय में यह निर्णय नहीं हो पाता है कि वास्तव में वे किसके तुल्य हैं। क्या वह देवता हैं, अथवा बान्धव हैं अथवा प्रियमित्र हैं अथवा आचार्य हैं अथवा स्वामी हैं अथवा रक्षारूप हैं अथवा नेत्र हैं अथवा महान् दीपक हैं अथवा धार्मिक गुरु हैं अथवा पिता हैं अथवा प्राण हैं अथवा (संसार के) प्रमुख कारण हैं अथवा बल हैं ? (किन्तु इतना निश्चय है कि) सभी वेषों में, सभी कालों में तथा सभी दशाओं में संसार का उपकार करने वाले हैं ॥ १०० ॥

[[2]श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिताः श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्यः सकृदपि पुरुषः सर्वपापैर्विमुक्तः ॥

---

१. कुबेर की नगरी अलका, जो हिमालय के शिखरों पर स्थित मानी गई है, का वर्णन महाभारत (३. १६. ३६-४१) में मिलता है। वहाँ इसे स्वर्ण भवनों से अलंकृत, मणि-निर्मित प्रासादों से युक्त एवं एक स्वर्ण की दीवाल से घिरी हुई बताया जाता है। इस नगरी को नृत्य-कुशल एवं परिहास करनेवाली स्त्रियों से युक्त बताया जाता है।

२. यह अन्तिम श्लोक त्रिभुवनपालकृत सूर्यशतक की टीका में नहीं है किन्तु यज्ञेश्वर शास्त्रीकृत सूर्यशतक टीका में इस श्लोक पर भी व्याख्या की गई है तथा काव्यमाला संस्करण में भी श्लोक मूल पाठ में आया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आरोग्यं सत्कवित्वं मतिमतुलबलं कान्तिमायुःप्रकर्षं
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात् ॥१०१॥

श्री मयूर (कवि) के द्वारा भक्तिपूर्वक ये सौ श्लोक संसार की समृद्धि के लिए रचे गए हैं। इनको जो (व्यक्ति) मनोयोग पूर्वक एकबार भी पढ़ता है (वह) सभी पापों से मुक्त हो जाता है और आरोग्य, सत्कवित्व, बुद्धि, अतुलबल, कान्ति, आयु वृद्धि, विद्या, ऐश्वर्य, अर्थ तथा सुत को भी सूर्य-कृपा से प्राप्त करता है ॥ १०१ ॥

इति महाकविमयूरभट्टविरचितं
सूर्यशतकं समाप्तम् ।

★

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
क्रमसंख्या 2638
प्राप्ति तिथि 25.5.65
State Museum, Library, Lko.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्लोकानुक्रमणिका

	श्लो०
अक्षे रक्षां निबध्य प्रतिसरवलयै	६७
अश्यामः काल एको न भवति	२०
अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिर	१८
अस्ताद्रीशोत्तमाङ्गं श्रितशशिनि	४२
आक्रान्त्या वाह्यमानं पशुमिव	५१
आयान्ती किं सुमेरोः सरणि	२७
आवानैश्चन्द्रकान्तैश्च्युततिमिर	३७
आवृत्तिभ्रान्तविश्वाः श्रममिव	१४
उज्जृम्भाम्भोरुहाणां प्रभवति	३९
उत्कीर्णस्वर्णरेणुद्रुतखुरदलिता	६८
उद्गाढेनारुणिम्ना विदधति	८
उद्यद्यूद्यानवाप्यां बहुलतम	७९
एकं ज्योतिर्दृशौ द्वे त्रिजगति	१३
एकाहेनैव दीर्घां त्रिभुवनपदवीं	६५
एतत्पातालपङ्कप्लुतमिव तमसै	९६
एतद्यन्मण्डलं खे तपति दिन	८९
कस्त्राता तारकाणां पतति तनु	७६
कैलासे कृत्तिवासा विहरति	८८
कामँल्लोलोऽपि लोकाँस्तदुपकृति	८६
क्ष्मां क्षेपीयः क्षपाम्भःशिशिर	२२
गन्धर्वैर्गद्यपद्यव्यतिकरितवचो	३६
गर्वेष्वम्भोरुहाणां शिखरिषु	३
चक्री चक्रारपङ्क्तिं हरिरपि च	७१
चक्षुर्दक्षद्विषो यन्न तु दहति	८०
जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव	१

	श्लो०
ज्योत्स्नांशाकर्षपाण्डुद्युतितिमिर	२६
तन्वाना दिग्वधूनां समधिक	१५
तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसी	९५
तीव्रं निर्वाणहेतुर्यदपि च विपुलं	२९
दत्तानन्दाः प्रजानां समुचित	९
दत्तार्धैर्दूरनम्रैर्वियति विनयतो	५२
देवः किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृद	१००
द्वीपे योऽस्ताचलोऽस्मिन्भवति	९७
धारा रायो धनायापरि सपदि	११
धुन्वन्तो नीरदालीर्निजरुचिह	४९
धूर्ध्वस्ताग्र्यग्रहाणि ध्वजपटपवना	६६
ध्वान्तध्वंसं विधत्ते न तपति	२८
ध्वान्तस्यैवान्तहेतुर्न भवति	८४
ध्वान्तौघध्वंसदीक्षाविधिपटु	६३
नन्तुं नाकालयानामनिशमनुयतां	६९
नाकौकःप्रत्यनीकक्षतिपटुमहसां	९०
निःशेषं नैशमम्भः प्रसभमपनुद	३२
निःशेषाशावपूरप्रवणगुरुगुण	२४
निःस्यन्दानां विमानावलिवितत	७०
नीत्वाश्वान्सप्त कक्षा इव नियम	५७
नेत्राहीनेन मूले विहितपरिकरः	७२
नो कल्पापायवायोरदयरय	२३
नोदन्वाञ्जन्मभूमिर्न तदुदरभवो	[illegible]
नो मूर्च्छाच्छिन्नवाञ्छः श्रमविवश	६०
नो शुष्कं नाकनद्या विकसित	८३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

	श्लो०
न्यक्कुर्वन्नोषधीशे मुषितरुचि	५
पर्याप्तं तप्तचामीकरकटकतटे	५६
पाशानाशान्तपालादरुणवरुणतो	५९
पीनोरःप्रेरिताभ्रैश्चरमखुरपुटाग्र	६२
पौरस्त्यस्तोयदर्तोः पवन इव	५५
प्रत्युप्तस्तप्तहेमोज्ज्वलरुचिरचला	७५
प्रभ्रश्यत्युत्तरीयत्विषि तमसि	४
प्राक्कालोन्निद्रपद्माकरपरिमलना	९२
प्राचि प्रागाचरन्त्योऽनतिचिर	१२
प्रातःशैलाग्ररङ्गे रजनिजवनिका	५०
प्लुष्टाः पृष्ठेऽशुपातैरतिनिकटतया	४५
बन्धध्वंसैकहेतुं शिरसि नति	१०
बिभ्राणः शक्तिमाशु प्रशमितबल	२५
बिभ्राणा वामनत्वं प्रथममथ	७
भक्तिप्रह्वाय दातुं मुकुलपुटकुटी	२
भासामासन्नभावादधिकतरपटो	८२
भिन्नं भासारुणस्य क्वचिदभिनवया	३५
भूत्वा जम्भस्य भेत्तुः ककुभि	३३
भूमिं धाम्नोऽभिवृष्ट्या जगति	९१
मत्वान्यान्पार्श्वतोऽश्वान्स्फटिक	४६
मा गान्म्लानिं मृणालीमृदुरिति	१९
मार्गोपान्ते सुमेरोर्नुवति कृतनतौ	४८
मीलच्चक्षुर्विजिह्मश्रुति जडरसनं	३१
मुञ्चन्रश्मीन्दिनादौ दिनगमसमये	५३
मूर्ध्न्यद्रेर्धातुरागस्तरुषु किसलयो	४१
मौलीन्दोर्मैष मोषीद्द्युतिमिति	१६
यः स्रष्टापां पुरस्तादचलनरवम	९३
यज्ज्यायो बीजमह्नामपनुततिमिरं	७३
यत्कान्तिं पङ्कजानां न हरति	२१
यत्प्राच्यां प्राक्चकास्ति प्रभवति	७७
योक्त्रीभूतान्युगस्य ग्रसितुमिव	६४
योनिः साम्नां विधाता मधुरिपु	९९
रक्षन्त्वक्षुण्णहेमोपलपटलमलं	४४
रत्नानां मण्डनाय प्रभवति नियतो	३०
लोटँल्लोष्टाविचेष्टा श्रितशयन	८५
वज्रिज्ञातं विकासीक्षणकमलवनं	५८
वाचां वाचस्पतेरप्यचलभिदुचिता	४०
विस्तीर्णं व्योम दीर्घाः सपदि	१७
वेलावर्धिष्णु सिन्धोः पय इव	७४
व्यग्रैरग्र्यग्रहेन्दुग्रसनगुरुभरैर्नो	९८
व्यापन्नर्तुर्न कालो व्यभिचरति	८७
शातः श्यामालतायाः परशुरिव	५४
शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्व्रणिभि	६
शुष्यन्त्यूढानुकारा मकरवसतयो	७८
श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति	१०१
संसक्तं सिक्तमूलादभिनवभुवनो	३४
साद्रिद्यूर्वीनदीशा दिशति दश	९४
सानौ सा नौदये नारुणितदलपुन	३८
सिद्धैः सिद्धान्तमिश्रं श्रितविधि	८१
सीदन्तोऽन्तर्निमज्जज्जडखुरमुसलाः	६१
हेलालोलं वहन्ती विषधरदमन	४७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हमारे कतिपय नवीन प्रकाशन

हिन्दी न्यायकुसुमाञ्जलि । हरिदासी टीका सहित । व्याख्याकार : आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि	६–००
हिन्दी ध्वन्यालोक । सानुवाद 'लोचन' व्याख्या, टिप्पणी सहित, प्रथम उद्योत	४–००
हिन्दी तर्कभाषा । आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि (तृतीय संस्करण)	६–००
हिन्दी निरुक्त । प्रो० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	६–२५
विश्वगुणादर्शचम्पू: । सानुवाद 'पदार्थचन्द्रिका' व्याख्या सहित	१०–००
नवसाहसांकचरित । हिन्दी व्याख्या सहित	१०–००
हिन्दी सर्वदर्शनसंग्रह । प्रो॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	२५–००
भासनाटकचक्रम् । 'प्रकाश' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित	२२–००
बुद्धचरित । (१–२८ सर्ग, अभिनव प्रकाशन) हिन्दी व्याख्या सहित	५–५०
महाकवि कालिदास । आचार्य रमाशंकर तिवारी	८–००
कौटिल्य का अर्थशास्त्र । हिन्दी रूपान्तर । श्रीवाचस्पति गैरोला	१०–००
कौटिल्य-अर्थशास्त्रम् । समूल हिन्दी व्याख्या सहित । "	३०–००
हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य । प्रभाकर माचवे	१२–००
स्मृति के हस्ताक्षर । (अतिशय रोचक संस्मरण) देवदत्त शास्त्री	६–००
हिन्दी के पौराणिक नाटक । डॉ० देवर्षि सनाढ्य शास्त्री	१०–००
मराठी का भक्ति साहित्य । प्रो० भी० गो० देशपांडे	१०–००
सब धर्मों की बुनियादी एकता । भारतरत्न, डॉ० भगवानदास जी	१२–००
हिन्दुओं की प्रबुद्ध रचनाएँ । अनुवादक : चारुचन्द्र शास्त्री	४–००
विक्रमादित्य । (संवत्-प्रवर्तक) डा० राजबली पाण्डेय	१०–००
मार्कण्डेयपुराण एक अध्ययन । आचार्य बदरीनाथ शुक्ल	४–५०
भारतीय भाषा विज्ञान । आचार्य किशोरीदास वाजपेयी	६–२५
श्रीमद्भगवद्गीता । (सानुवाद मधुसूदनीव्याख्या) स्वामी सनातनदेव	१५–००
वैदिक इण्डेक्स । अनुवादक : प्रो० रामकुमार राय । १–२ भाग	४०–००
वैदिक माइथोलौजी । अनुवादक : प्रो० रामकुमार राय	१५–००
शौनकीय बृहद्देवता । अनुवादक : प्रो० रामकुमार राय	१५–००
प्राकृत साहित्य का इतिहास । डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	२०–००
प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन । डॉ० राय गोविन्दचन्द	१२–००

चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow